॥ श्री स्वामिनारायणो विजयते ॥

सत्संग शिक्षण श्रेणी का पाठ्यपुस्तक

सत्संग वाचनमाला

भाग : 3

: लेखक :

साधु ईश्वरचरणदास

प्रकाशक

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग रोड़, अहमदाबाद-380 004

SATSANG VACHANMALA, PART-3 (Hindi Edition)
(Life sketches of prominent devotees of Lord Swaminarayan)

By Sadhu Ishwarcharandas

A textbook for examination prescibed under the curriculum set by Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha.

Inspirer: HDH Pramukh Swami Maharaj

Presented by:

Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha
'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu,
Yamuna Kinara, New Delhi - 110 092. India.

Publishers:

SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad - 380 004. India.

1st Edition: November 2002 **Copies :** 3,000

Warning:

Copyright: ©Swaminarayan Aksharpith

This book is published by Swaminarayan Aksharpith. Material from this book cannot be used without due acknowledgement to Swaminarayan Aksharpith, Shahibaug, Amdavad. For any reprints the written permission of the publishers is necessary.

IBSN: 81-7526-214-1

रजूकर्ता : बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था (बी.ए.पी.एस.)
'स्वामिनारायण अक्षरधाम', नेशनल हाईवे 24, अक्षरधाम सेतु,
यमुना किनारा, नई दिल्ली - 110 092.

प्रेरणामूर्ति : प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज

सूचना : सर्वाधिकार सुरक्षित : © स्वामिनारायण अक्षरपीठ

इस पुस्तक के अंश किसी भी स्वरूप में प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की लिखित सम्मति अनिवार्य है।

प्रथम संस्करण : नवम्बर, 2002

प्रति : 3,000

मूल्य : रु. 15.00

मुद्रक एवं प्रकाशक :

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद-380 004.

कृपाकथन

ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री योगीजी महाराज द्वारा स्थापित व पोषित युवक प्रवृत्ति तीव्र गति से विस्तृत होती जा रही है। इस प्रवृत्ति से जुड़े युवाओं की आकांक्षा तथा ज्ञानपिपासा को संतुष्ट करने तथा उन्हें भगवान स्वामिनारायण प्रबोधित अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत की ओर अभिमुख करने के उद्देश्य से बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था ने क्रमबद्ध पुस्तकों के प्रकाशन का आयोजन किया है।

इन पुस्तकों द्वारा बालकों और युवाओं को व्यवस्थित, सुगम तथा सरल ढंग से सत्संग का शुद्ध ज्ञान प्राप्त होगा। भगवान स्वामिनारायण द्वारा उद्‌बोधित आदर्शों के पालन व प्रचार के लिए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा स्थापित यह संस्था, इस प्रकार की अनेक सत्संग प्रवृत्तियों में संलग्न है कि जिससे विश्व में हमारी महान हिन्दू संस्कृति का प्रचार व प्रसार हो।

भगवान स्वामिनारायण का दिव्य संदेश विश्व के कोने-कोने में प्रसारित हो तथा सभी मुमुक्षुओं को शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो इसी हेतु इन पुस्तकों का भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशन किया गया है।

इन पुस्तिकाओं के आधार पर सत्संग शिक्षण परीक्षाएँ आयोजित की जाएँगी साथ ही बालकों-युवकों को प्रमाणपत्र देकर प्रोत्साहित किया जाएगा। इस पुस्तकों को तैयार करने में ईश्वरचरण स्वामी, रमेशभाई दवे, किशोरभाई दवे तथा अन्य सहयोगियों ने भारी परिश्रम उठाया है, उनको हमारे आशीर्वाद हैं।

अत्यंत स्नेहपूर्वक

जय श्री स्वामिनारायण।

शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी

(प्रमुखस्वामी महाराज)

निवेदन

वचनामृत में भगवान स्वामिनारायण कहते हैं कि मैं इस ब्रह्मांड में अपना अक्षरधाम, अपने अक्षरमुक्त तथा अपने समग्र ऐश्वर्य के साथ अवतरित हुआ हूँ। वे कृपा करके अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के साथ-साथ सद्‌गुरु गोपालानंद स्वामी, सद्‌गुरु मुक्तानंद स्वामी, सद्‌गुरु निष्कुलानंद स्वामी, सद्‌गुरु नित्यानंद स्वामी, मुकुंद ब्रह्मचारी, दादाखाचर, अगतराई गाँव के भक्तराज पर्वतभाई तथा लाडुबाई, जीवुबाई आदि भक्तों को भी हम सब की प्रेरणा के लिए साथ लेकर पधारे।

इन महासमर्थ अक्षरमुक्तों के चरित्र भी अत्यंत प्रेरक हैं। भगवान स्वामिनारायण के प्रति उनकी निष्ठा एवं भक्ति हमारा अनंतकाल तक मार्गदर्शन करती रहेगी। ऐसे समर्थ संतों-भक्तों के सामर्थ्य को मानो श्रीहरि ने दबाकर रखा था। फिर भी उनके व्यक्तित्व से देदीप्यमान हो रहे सद्‌गुण एवं विशेषताएँ आश्चर्यकारी हैं।

इन भक्तों के चरित्र 'सत्संग वाचनमाला' के नाम से संकलित किए गए हैं। इसी परंपरा में आनेवाले अन्य अक्षरमुक्तों के चरित्रों का समावेश इस पुस्तिका में किया गया है।

सत्संग परीक्षाओं के अभ्यासक्रम के रूप में इन पुस्तिकाओं की रचना की गई है। चतृथ स्तर की परीक्षा 'सत्संग प्रवीण' के लिए प्रकाशित इस पुस्तिका को आपके हाथों में रखते हुए हम अत्यंत हर्षित हैं।

स्वामी-श्रीजी तथा प्रकट गुरुहरि प्रमुखस्वामी महाराज की प्रसन्नता के लिए सत्संगी बालक, युवक और जिज्ञासु इसकी शिक्षा प्राप्त करके सत्संग शिक्षण परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर उच्च प्रमाणपत्र प्राप्त करें यही प्रार्थना।

- संपादक मंडल

॥ श्री स्वामिनारायणो विजयते ॥

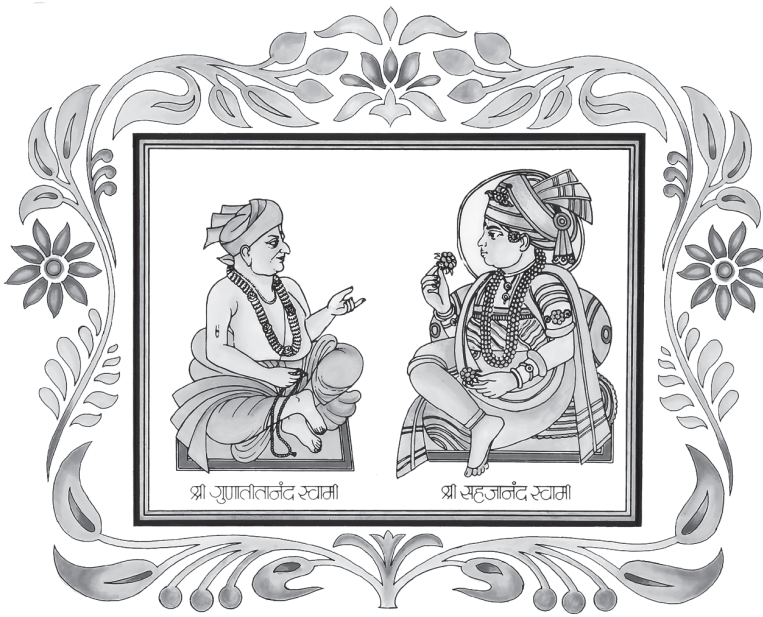

हम तो हैं स्वामी के बालक, मरेंगे स्वामी के लिए ।
हम तो हैं श्रीजी के युवक, लड़ेंगे श्रीजी के लिए ।।

नहीं डरते नहीं करते, हमारी जान की परवाह ।
हमें हैं भय नहीं किससे, न हमको मौत की परवाह ।।

किया शुभ यज्ञ का आरंभ, हम बलिदान कर देंगे ।
हमारे अक्षरपुरुषोत्तम, गुणातीत गान गाएँगे ।।

हम तो हैं श्रीजी की संतान, स्थान है अक्षर में हमका ।
लगाई धर्मनिष्ठा की भभूत तो शर्म है किसकी ? ।।

मिले हैं 'मोती' के स्वामी, उन्होंने बाँह ली थामी ।
प्रकट पुरुषोत्तम धामी, अक्षर ब्रह्म गुणातीत स्वामी ।।

अनुक्रमिका

क्रम	चरित्र	पृष्ठ
1.	योगमूर्ति सद्‌गुरु गोपालानन्द स्वामी	1
2.	सद्‌गुरु मुक्तानन्द स्वामी	15
3.	वैराग्यमूर्ति सद्‌गुरु निष्कुलानन्द स्वामी	33
4.	आदि आचार्य श्री रघुवीरजी महाराज	47
5.	भक्तिमती राजमाता कुशलकुंवरबा	55
6.	भक्तराज पर्वतभाई	65
7.	भक्तराज शिवलाल सेठ	75

सत्संग वाचनमाला

भाग तीसरा

योगमूर्ति सद्. गोपालानन्द स्वामी

योगमूर्ति
सद्‌गुरु गोपालानन्द स्वामी

भगवान स्वामिनारायण गढ़पुर में 'अक्षरकुटिर' में विराजमान थे। गोपालानन्द स्वामी, नित्यानन्द स्वामी, ब्रह्मानन्द स्वामी आदि महान सद्‌गुरु उनके समक्ष विराजमान थे। श्रीहरि ने सन्तों से पूछा, 'आप सब वास्तव में महान विभूतियाँ हैं, मैं आप सबकी व्यक्तिगत विशेषता के विषय में जानना चाहता हूँ।

संतों ने अपनी-अपनी विशेषता की जानकारी दी, तब गोपालानन्द स्वामी ने कहा था, 'हे महाराज, अनन्त ब्रह्माण्ड में वैसे तो आपका किया ही सर्वत्र होता है, किन्तु आपकी कृपा से एक बार तो मैं भी मेरा किया इस ब्रह्मांड में कर सकता हूँ !'

श्रीहरि यह सुनकर यह सुनकर सम्मतिपूर्वक मुस्कुराने लगे। उन्होंने कहा, 'आपका कहा नि:संशय सत्य है !'

ऐसे महासमर्थ योगमूर्ति संत, सद्‌गुरु गोपालानन्द स्वामी का जन्म संवत् 1837 (सन् 1781) में महा शुक्ला अष्टमी के दिन गुजरात के साबरकांठा जिले में इड़र प्रांत के टोड़ला गाँव में हुआ था। उनके पिता थे मोतीराम भट्ट और माता थीं कुशला देवी। स्वामी के बचपन का नाम खुशाल भट्ट था।

गौरवर्ण और तेजस्वी मुखाकृतिवाले इस बालभक्त के विशिष्ट लक्षण प्रभात के किरणों की भाँति फूटने लगे। चार साल की मासूम उम्र में तो शिशु ने पिता से संस्कृत भाषा का शिक्षण पाना प्रारंभ किया। थोड़े समय के बाद समीप के नभोई गाँव के विद्वान विप्र से व्याकरण, न्याय, ज्योतिष, खगोल तथा वेद-वेदान्त का भी गहन अभ्यास किया।

पूर्व के योगाभ्यासी यह बालक टोड़ला गाँव से बहती छोटी सी नदी के तट पर एक छोटे से शिवालय में घंटों तक ध्यानमग्न बैठे रहते। कभी कभी तो गाँव की चारों और फैली सुहावनी पर्वतमाला की कंदराओं में महीनों तक तपश्चर्या भी करते रहते। अत: उनके मुखाविन्द पर यौगिक कांति

सदा-सर्वदा चमकती रहती !

अध्ययन पूर्ण होते ही उन्होंने गाँव में ही एक पाठशाला का प्रारंभ किया। बच्चों को अभ्यास के साथ साथ भगवद्भक्ति, धून-कीर्तन एवं नामस्मरण के पाठ देना वे कभी नहीं भूलते। कभी-कभी तो भक्ति की भावपूर्ण स्थिति में बैठकर वे प्रभु में इतने तल्लीन हो जाते कि देह की सूध-बूध तक नहीं रहती ! बच्चे भी खुशाल भक्त के साथ भक्ति के प्रभाव से समाधि की स्थिति प्राप्त करते। देवदर्शन, पूजा-पाठ, कथावार्ता, संतों की सेवा ही खुशाल भक्त का नित्यक्रम था। इस भक्तराज का जीवन वैसे भी अनन्य था, विशिष्ट एवं चमत्कारी !

टोड़ला से तकरीबन 13-15 कि.मी। पर एक बड़ा वैष्णवतीर्थ है: शामलाजी। यहाँ भगवान श्री कृष्ण का एक पुरातन मंदिर है। एक दिन की बात है। पुजारी ने प्रात:काल मंदिर के मुख्य द्वार खोले। देखा तो स्तब्ध रह गया। क्योंकि प्रभु की मूर्ति ही मुख्य सिंहासन से गायब थी ! वह दौड़कर अन्य लोगों को बुला लाया, परंतु जब उसने मंदिर के द्वार पुन: खोल दिए तो उसको और भी आश्चर्य हुआ। क्योंकि इस बार सिंहासन में मूर्ति यथावत् हाज़िर थी ! लेकिन इस प्रसंग से लोगों को पुजारी की नियत पर की शंका उठने लगी। कु क्षणों की तलाश में ही सबको मालूम हो गया, कि मूर्ति के वस्त्रालंकारों में से सोने का एक नुपूर और एक ज़रियान वस्त्र गायब था। पुजारी पर इसकी चोरी का आरोप आ पड़ा। वह बेचारा दु:ख से रोने लगा।

ठीक उसी समय मूर्ति से स्पष्ट आवाज़ सुनाई दी, 'पुजारी ने कोई गुनाह नहीं किया है। यहाँ से थोड़ी दूरी पर टोड़ला नामक एक गाँव है, वहाँ मेरे एक भक्त हैं, खुशाल भक्त। उनके साथ मैं हर रातको खेलने जाता हूँ। आज पुजारी ने रोज के समय से पहले मंदिर के द्वार खोल दिए, अत: मुझे वहाँ से दौड़ते हुए आना पड़ा। अत: मेरी ये दोनों चीज़ें रास्ते में ही कहीं गिर गईं होगीं, आप तलाश कीजिए, दोनों चीज़ें मिल जाएँगीं !

यह आवाज़ सुनते ही सभी आश्चर्यमुग्ध रह गए। इस ओर खुशाल भक्त की माँ सुबह जब अपने आंगन में बुहारी लगा रही थीं, कि यही दोनों चीज़ें उन्होंने देख ली। माँ को अत्यंत आश्चर्य हुआ, तब बालभक्त ने मर्म में स्मित किया और मुस्कुराते हुए कहा, 'माँ, दोनों चीज़ें वहीं की वहीं रहने

दीजिए। जिनकी हैं, अभी-अभी आकर ले जाएँगे !'

थोड़ी ही देर में शामलाजी मंदिर के कुछ लोग खुशाल भक्त का घर खोजते हुए आ पहुँचे। उन्होंने भक्त को प्रणाम किया, माँ को पूरी बात बता दी, और आश्चर्य चकित स्थिति में ही दोनों चीज़ें लेकर लौट गए। कुशलादेवी भी अपने पुत्र की इस अलौकिक लीला से मन ही मन अत्यंत प्रसन्न हुई।

ऐसे कई चमत्कारी प्रसंगों में एक घटना अविस्मरणीय है। उस अरसे में ईड़र के राजा ने प्रत्येक विप्र पर वार्षिक तीन रुपये का करबोझ डाल दिया। अग्रणी विप्रों ने इस नियम का जमकर विरोध किया, राजा के पास करमुक्ति के लिए विनती भी की, किन्तु राजा ने करमुक्ति की अपील को सर्वथा अमान्य रखी। ब्राह्मणों को अब बालभक्त खुशाल की याद आई।

उनकी प्रसिद्धि दूर तक फैल चुकी थी। ब्राह्मणों ने आकर खुशाल भक्त को जानकारी दी। खुशाल भक्त ने भी राजा को करमुक्ति के लिए विनती की, किन्तु गर्व में चूर और अज्ञान की जडता के कारण खुशाल भक्त को बालक जानते हुए राजा ने उनकी उपेक्षा की।

खुशाल भक्त बिलकुल मौन रहकर वापस लौटे, और ब्राह्मणों को गाँव के बाहर एक बावड़ी के पास बिठाकर भगवान से प्रार्थना करने लगे कि राजा को कुछ सद्‌बुद्धि मिले। लेकिन अपने भक्त का अपराध भगवान कैसे क्षमा करते ? भगवान की इच्छा से उसी समय राजा, उसके स्वजनों और उसके अधिकारियों की कुदरती हाजत बंद हो गई ! राजमहल में हाहाकार मच गया। सभी व्याकुल हुए कष्ट से तड़पने लगे। किसीने सलाह दी कि मानो या न मानो आपने छोटा बच्चा जानकर खुशाल भक्त का अपमान किया है, उसी कारण ऐसा कष्ट भुगतना पड़ रहा है। अतः जाकर के उनकी क्षमायाचना करें, तभी इस दुःख से छुटकारा मिल सकेगा !

राजा तुरंत संमत हुआ। अपने कर्मचरियों के साथ आकर उसने भाव पूर्वक क्षमाप्रार्थना की। तब बाल भक्त ने स्पष्ट कहा, 'आप पहले ब्राह्मणों को करमुक्ति का वचन दीजिए और उसका ताम्रपत्र पर दस्तावेज लिख दीजिए, तभी कष्ट से मुक्ति मिलेगी !'

राजा ने तुरन्त उस आदेश का पालन किया। कुछ देर के बाद सब की

तबियत ठीक हो गई। इस प्रसंग के बाद सभी खुशाल भक्त की अपार महिमा समझने लगे, ऐसी अनेक चमत्कारिक घटनाओं के अनुभव अनेक लोगों को हुए थे।

कुछेक सालों के बाद वाडाशिनोर गाँव के दो सत्संगी काशीराम भाई और मुरलीधर भाई से खुशाल भक्त ने भगवान स्वामिनारायण के प्राकट्य, कार्य और महिमा विषयक बातें सुनी, और पूर्व संस्कार से खुशाल भक्त को श्रीहरि के दर्शन की उत्कंठा अत्यंत तीव्र होती गई।

इसी अरसे में नभोई गाँव में श्रीहरि के परमहंस सर्वेश्वरानन्दजी का उनको संपर्क हुआ। उनसे वर्तमान दीक्षा ग्रहण करके खुशाल भक्त श्रीहरि के आश्रित हुए। लेकिन वे महाराज के दर्शन की तत्परता रोक नहीं सके ! डभाण गाँव में आपने श्रीहरि के सर्व प्रथम बार दर्शन किए। पूर्वकाल का स्नेह उमड़ उठा ! जिस प्रकार नदी समुद्र में मिलती हैं, उसी प्रकार खुशाल भक्त श्रीहरि के दिव्यस्वरूप में तल्लीन हो गए। उन्होंने भावविभोर अवस्था में आनन्दाश्रु से श्रीजी के चरणकमलों पर अभिषेक किया। श्रीहरि भी अपने भक्त को मिलकर अत्यंत प्रसन्न हुए। पूर्व का ज्ञान प्रकट होते ही उन्हें श्रीहरि को ही परब्रह्म पुरुषोत्तम समझकर निश्चय कर लिया !

अब श्रीहरि के अनन्याश्रय में विलंब क्यों ? खुशाल भक्त ने तुरन्त त्यागी होकर उनके चरणकमलों में निवास करने का निश्चय ज़ाहिर किया। महाराज से उन्होंने बार-बार विनती की परंतु उन्होंने थोड़ी और प्रतीक्षा के लिए आज्ञा दी। भक्तहृदय खुशाल भक्त को चैन की नींद कहाँ ? वे दिनरात श्रीहरि के आदेश की प्रतीक्षा में बीताने लगे।

अचानक एक दिन एक ब्राह्मण खुशाल भक्त के घर आ पहुँचा। उस के साथ खुशाल भक्त भी श्रीहरि के दर्शन की आशा से गुजरात की और निकल पड़े। रास्ते में ब्राह्मण ने भक्तराज की तमाम प्रकार की सेवा की। भोजन दिया, पाँव में लगे काँटे निकाल दिए-इस प्रकार बहुत सेवा की लेकिन अहमदाबाद के पास जेतलपुर गाँव से ब्राह्मण ने भक्तराज का साथ छोड़ दिया और कहा, 'स्वामिनारायण भगवान यहीं बिराजमान हैं, आप उनसे मिलें, मैं अभी आता हूँ !'

खुशाल भक्त तो दर्शन की लगन में जल्दी से श्रीहरि के पास पहुँच

गए। श्रीहरि ने भी वे कैसे आए, इत्यादि जानकारी ली। खुशाल भक्त ने बताया कि एक ब्राह्मण ही मुझे यहाँ, गाँव तक ले आया था। यह सुनकर महाराज हँसने लगे। फिर महाराज ने रास्ते की कुछेक घटनाएँ कह दिखाई, तब खुशाल भक्त को भरोसा बैठ गया, कि अन्य कोई नहीं, अपितु स्वयं श्रीहरि ही मुझे लेने के लिए ब्राह्मण के रूप में गाँव में आ पहुँचे थे ! वे गद्‌गदित होते हुए श्रीहरि के चरणों में गिर पड़े !

श्रीहरि की इच्छा से कुछ समय उन्होंने बड़ौदा के पास सरसवणी गाँव में शिक्षक बनकर बिताया। वहाँ वे बच्चों को पढ़ाते रहते। उन दिनों उन्होंने श्रीहरि की आज्ञा से बड़ौदा में सदाशिवभाई के घर रहकर कथावार्ता द्वारा अनेक मुमुक्षुओं को सन्मार्ग पर प्रेरित किया।

आखिर त्यागाश्रम प्रवेश का मंगल अवसर आ पहुँचा। श्रीहरि ने खुशाल भक्त को गढ़पुर बुलाए। संवत् 1864 (सन् 1808) के कार्तिक कृष्णा अष्टमी के दिन दादाखाचर के दरबार भुवन में श्रीहरि ने उन्हें भागवती दीक्षा देकर 'गोपालानन्द स्वामी' ऐसा शुभ नामाभिधान किया।

श्रीहरि की आज्ञा से स्वामी अधिकतर बड़ौदा में रहते। यहाँ अनेक विद्वान निवास करते थे। उनको सत्संगी बनाना सरल नहीं था, लेकिन अपनी साधुता और विद्वत्ता से गोपालानंद स्वामी ने विद्वानों, सद्‌गृहस्थों, राज्य के अधिकारियों और स्वयं महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ को भी सत्संग की दृढ़ता कराई। अनेक लोगों को श्रीहरि के आश्रित बनाए। स्वामी के ऐश्वर्य से भी इस प्रदेश में सत्संग विकास में अधिक वेग मिला था।

बड़ौदा में एक दिन विष्णुयज्ञ का आयोजन था। यजमानों ने याज्ञिक से पूछ लिया: 'यज्ञनारायण हमें प्रत्यक्ष दर्शन देंगे या नहीं ?'

भाविक याज्ञिक ने कहा, 'कोई संतपुरुष यदि आहुति दे तो यज्ञनारायण अवश्य दर्शन दें !'

अब ब्राह्मणों ने स्वामी को समर्थ तथा प्रतापी जानकर उनको आहुति देने के लिए निमंत्रित किया। सब की विनती से स्वामी कृपा करके यज्ञ में पधारे। जैसे ही उन्होंने घी की आहुति दी, सबके आश्चर्य का पार नहीं रहा ! क्योंकि साक्षात् यज्ञनारायण ने अग्निशिखाओं से प्रकट होकर सभी को दर्शन दिया। आज यजमानों के साथ सभी आनन्द विभोर हो उठे।

एक सत्संगी विप्र बड़ौदा में रहते थे। उन्हें ज्योतिष का ज्ञान अधिक था। उस समय पूर्णिमा का ग्रहण होनेवाला था। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार गिनती करके सत्संगी ज्योतिष ने ज़ाहिर किया कि 'इस महीने पूर्णिमा के दिन ग्रहण नहीं होगा।' जबकि बड़ौदा के अन्य ज्योतिषयों ने गणना करके ज़ाहिर किया कि उस दिन ग्रहण अवश्य दिखेगा। अब स्वमान का सवाल खड़ा हो गया। सत्संगी ज्योतिष ने दृढ़तापूर्वक ज़ाहिर कर दिया कि यदी मेरी गिनती गलत साबित होगी तो मैं मेरा मस्तक काटकर रख दूँगा !

इस विवाद की जानकारी गोपालानन्द स्वामी को मिली। स्वामी तो जानते ही थे। कि ग्रहण तो अवश्य दिखनेवाला है, लेकिन सत्संगी भक्त ने अपने मस्तक का सौदा कर रखा था ! अब क्या किया जाए ? उन्होंने कुछ सोच कर ज्योतिषियों से कहा, 'उस भक्त की गिनती सत्य है, इस वक्त ग्रहण नहीं दिखेगा !' सभी द्विधाग्रस्त होकर चल दिए और ग्रहण के दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

जब पूर्णिमा का दिन आया, तो ग्रहण सचमुच बिलकुल दिखाई नहीं दिया ! सभी विद्वान दिग्मूढ़ हो गए। सत्संगी ज्योतिष को बुलाकर स्वामी ने आशीर्वाद दिया और कहा, 'भक्तराज, इस प्रकार मस्तक का सौदा कभी मत करना ! ग्रहण तो दिखनेवाला ही था, किन्तु तुम्हारी रक्षा के लिए महाराज ने उसे रोक लिया !'

स्वामी का ऐसा प्रौढ़ प्रताप देखकर भक्त विप्र सोचने लगा कि ग्रहों की गति बदलने की स्वामी की सामर्थी कितनी अनन्य है !

खेडा जिले से सौराष्ट्र में गढ़पुर जाते रास्ते में सारंगपुर गाँव से गुजरना पड़ता है। उन दिनों यात्रिकों के संघ के लिए सारंगपुर अच्छा विश्रामस्थल था। गाँव के ठाकुर वाघा खाचर भी निष्ठावान भक्त थे। वे यात्रिकों की सुविधा का अच्छा खयाल रखते थे। किन्तु उनकी आर्थिक स्थिति इतनी संपन्न नहीं थी, कि इतनी सेवा अविरत रूप से उठा सके। अत: वे मन ही मन चिन्ता में ही दिन बिताते थे, कि मैं अब सत्संगियों की सेवा किस प्रकार कर सकूँगा ?

गोपालानन्द स्वामी को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने सोचा, दरबार का यह दु:ख मुझे अवश्य मिटाना चाहिए। उन्होंने पत्थर से हनुमानजी की

एक मूर्ति तैयार करवाई, और वाघा खाचर के दरबार भुवन के एक कक्ष में उसकी प्रतिष्ठा की। प्रतिष्ठा के समय अपनी छड़ी से मूर्ति का स्पर्श किया। स्पर्श करते ही उसमें इतना सामर्थ्य रखा, कि मूर्ति काँपने लगी। श्रीहरि के वनविचरण के दौरान जिन्होंने सेवा की थी, उसी हनुमानजी का स्वामी ने मूर्ति में आह्‌वान कर दिया था। स्वामी के वचन से हनुमानजी का प्रताप बहुत जल्दी से फैलने लगा। भूत-प्रेतादिक के उपद्रव से पीड़ित सैकड़ों लोग वहाँ आने लगे। देश-विदेश से दु:खी लोगों का एक तांता लग गया। हनुमानजी सब की ऐहिक मनोकामना पूर्ण करते थे, संकट से मुक्ति देते थे। लोग खुश होकर कुछ न कुछ भेंट अर्पण करने लगे। इस प्रकार वाघाखाचर की आर्थिक विपत्ति भी दूर हो गई। वे भक्तों की सेवा उत्साहपूर्वक करने लगे। इस मंदिर की जमीन तथा आय उन्होंने कुछेक सालों के बाद गढ़पुर के मंदिर के वहीवटकर्ताओं को सुपुर्द कर दी थी।

आज भी स्वामी के द्वारा प्रतिष्ठत हनुमानजी ऐसा ही प्रताप दिखा रहे हैं। ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज ने इस मंदिर के महंतपद पर कुछ समय तक सेवा की थी, उसी अरसे में उन्होंने इस स्थान का जीर्णोद्धार किया और आलीशान इमारतें खड़ी करके इस स्थान की महत्ता में चार चांद लगा दिए थे।

अलौकिक ऐश्वर्यों के साथ-साथ स्वामी की कथा शैली तथा ज्ञानप्रवाह भी अद्‌भुत था। उनके सत्संग से मुमुक्षु संसार की आसक्ति से मुक्त हो जाता, संत्सग की महिमा तथा श्रीहरि की निष्ठा हृदय में दृढ़ हो जाती। परमचैतन्यानन्द स्वामी, बड़ौदा के सदाशिवभाई, सुंदरियाणा गाँव के हिमराज सेठ आदि अनेक भक्तों को उन्होंने ज्ञान देकर श्रीहरि के अनन्य आश्रित किए थे।

ऐसी ही एक अन्य घटना मेंगणी गाँव के ठाकुर मानसिंहजी के जीवन में घटी। वे शिकार के शौक़ीन थे, मद्य-मांस का भक्षण और पापाचार उनकी स्वाभाविक प्रकृति बन चुकी थी। लेकिन अपने कुलपरंपरा के अनुसार वे अपने दरबार भुवन में रामायण का पठन करवाते थे। कभी-कभी फ़ुर्सत पाते ही वे भी कथा सुनने बैठ जाते।

एक दिन कथा में उन्होंने सुना:

नारी नयन सर जाहि न लागा,
घोर क्रोध तम निसि जो जागा,

लोभ पास जेहि नर न बँधाया,
सो नर आप समान रघुराया !

यह सुनते ही मानसिंहजी ने कथा पढ़नेवाले सत्संगी विप्र जेठा महाराज से पूछ लिया, 'क्या तुम्हारे स्वामिनारायण संप्रदाय में ऐसे कोई संत हैं ?' जेठा महाराज ने तुरंत गोपालानन्द स्वामी की बात बताई। सुनते ही मानसिंह के अंत:करण में प्रकाश फैलने लगा। उन्होंने स्वामी के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त की तथा स्वामी को निमंत्रित किया।

संतमंडल के साथ स्वामी मेंगणी पधारे। मानसिंह घर पर उपस्थित नहीं थे, अत: संतों ने गाँव के बाहर बाड़ी में मुकाम किया। मानसिंहजी अपने दीवानजी के साथ जब उनके दर्शन के लिए आए तब स्वामी ध्यानस्थ बैठे थे। दोनों स्वामी के जगने की प्रतीक्षा करते खड़े रह गए। संतों के आगमन और दर्शन से ही उनके भीतर में श्रद्धा का दीप प्रज्वलित हो गया। जागृत होने पर स्वामी की दृष्टि मानसिंहजी पर पड़ी। उनको तुरन्त समाधि लग गई और अक्षरधाम में श्रीहरि का दिव्य दर्शन होने लगा। स्वामी के सत्संग से दरबारश्री को श्रीहरि की अपंरपार महिमा समझ में आई। उनका अन्त:करण पवित्र हुआ और वे श्रीजी के अनन्य आश्रित हुए।

स्वामी के अलौकिक व्यक्तित्व में साधुता और विद्वत्ता का अनोखा संगम था। श्रीहरि ने उनको अपने प्राकट्य के छ: मुख्य उद्देश्यों के विषय में कारियाणी में रहस्यमयी बातें कही थीं। स्वधामगमन से पूर्व श्रीहरि ने सत्संग के दोनों विभागों की अर्थात् अहमदाबाद तथा वरताल की जिम्मेदारी उन्हीं को सौंपी थी, तथा अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी के लिए कहा था कि आपको दोनों विभागों के मुख्य संत नियुक्त किए हैं, किन्तु ये गुणातीतानन्द स्वामी तो साक्षात् अक्षरधाम है। अत: आप उनका और रघुवीरजी महाराज का विशेष ध्यान रखना !

श्रीहरि ने सभी संतों-हरिभक्तों को आदेश दिया था कि आप सब प्रतिवर्ष एक मास तक गुणातीतानन्द स्वामी के सत्संग के लिए जूनागढ़ जाना।

इस आदेश के अनुसार गोपालानन्द स्वामी प्रतिवर्ष गुणातीतानन्द स्वामी के सत्संग के लिए जूनागढ़ पधारते, और सभा में कभी-कभी स्वामी

की अपार महिमा कहते कि गुणातीतानन्द स्वामी स्वयं अक्षरधाम है। गोपालानन्द स्वामी ने अपने कई शिष्यों को श्रीहरि का यह सिद्धांत दृढ़ कराया था। जिनकी नामावली तो बहुत बड़ी है, फिर भी यहाँ कुछेक नामों का स्मरण अनिवार्य है। अचिन्त्यानन्द ब्रह्मचारी, स्वामी माधवप्रियदासजी, स्वामी माधवचरणदासजी, प्रागजी भक्त, जागा भक्त, शिवलालभाई सेठ, जीभाई शेलत, स्वामी केशवजीवनदास इत्यादि दो सौ से अधिक संत-हरिभक्तों को स्वामी ने गुणातीतानन्द स्वामी की यथार्थ महिमा समझाकर सत्संग करने के लिए भेजे थे !

गुणातीतानन्द स्वामी भी उनकी अपार महिमा कथाप्रसंग में कहते थे, कि 'गोपालानन्द स्वामी तो समुद्र के समान हैं ! अनंत जीवों को माया पार लगा दे ऐसी उनकी सामर्थी हैं। मच्छर से लेकर गरुड़ तक मुक्तों के भेद हैं, उनमें गोपालानन्द स्वामी तो गरुड़ के समान हैं। ऐसे संत के साथ तो भगवान निवास करते हैं, अतः दो वर्ष क्या, चार कल्प तक भी उनके साथ रहें फिर भी कठिन नहीं पड़ता ! जैसे रघुवीरजी महाराज थे और जैसे गोपालानन्द स्वामी थे वैसे तो कोई उनको पहचान ही नहीं पाए।'

स्वामी ने अष्टांगयोग सिद्ध किया था। उनकी देह की प्रकृति कृश एवं कोमल थी। फिर भी उनका त्याग-वैराग्य का वेग रंचमात्र भी कम नहीं हुआ था।

एक दिन एक प्रेमी भक्त ने स्वामी को एक रेशम की धोती भेंट दी, और महिमापूर्वक विनती की, 'स्वामी, जब तक यह फट न जाएँ, तब तक इस धोती का उपयोग करते रहना।'

स्वामी ने उसका अनादर भी नहीं किया, और श्रीहरि की आज्ञा का उल्लंधन भी नहीं किया। लेकिन उन्होंने तत्काल उस धोती को खूब कसकर पहना, और बैठने गए कि चर्र आवाज़ के साथ धोती फट गई !

इस प्रकार रेशमी वस्त्रों को धारण न करने की श्रीहरि को आज्ञा का उन्होंने युक्तिपूर्वक पालन किया !

स्वामी कभी दूध-घी आदि स्निग्ध पदार्थ अंगीकार नहीं करते थे। रोटी भी बिना घी की ही लेते, तथा कभी-कभी तो सेवक घी लाकर रखते तो अग्नि देवता को आहुति में चढ़ा देते ! इसी कारण स्वामी का शरीर भी

अत्यंत दुर्बल रहता। उनकी देह स्वस्थ रखने के लिए तथा हरिभक्तों को कथा आदि का सुख अत्यधिक दे सके इसीलिए गुणातीतानन्द स्वामी ने उन से कहा था कि 'स्वामी, आपकी उम्र अब अधिक हुई है, तो अब थोड़ा घी भोजन में अंगीकार करना !'

यद्यपि स्वामी की कोई रुचि नहीं थी, गुणातीतानन्द स्वामी ने उन्हें एक बार घीवाली रोटी परोसी। उनका प्रेमाग्रह देखकर स्वामी ने अंगीकार तो कर ली, लेकिन इतना कहा कि 'अब मुझसे त्याग-वैराग्य की बातें नहीं होगी ! त्याग की बातें अब आप करना !'

ऐसी तप तथा ऐश्वर्य से झगमगाती हुई स्वामी की अनन्य प्रतिभा का तेज कई द्वेषी लोग सह नहीं सकते थे ! अतः असंतुष्ट साधुओं ने स्वामी का अपमान करके, सत्संग से बहिष्कृत करने का प्रयत्न भी किया था। लेकिन गुणातीतानन्द स्वामी ने उनका अत्यंत दृढ़ता से पक्ष रखा। उनकी महत्ता के कारण द्वेषी लोगों की एक न चली।

एक बार स्वामी की भिक्षा की झोली में द्वेषियों ने जलते अंगारे डाल दिये थे ! और उनके रचे हुए अमूल्य ग्रंथों का भी नाश करने का प्रयत्न किया था ! ऐसे अनेक त्रासदायी प्रसंगों में स्वामी की क्षमावृत्ति और महिमादृष्टि तनिक भी कम नहीं हुई !

उनकी करुणा को उजागर करनेवाली यह घटना हृदयस्पर्शी है: हमीर नामक एक भक्त से ब्रह्मचर्य व्रत का भंग हो गया। सब अग्रणियों ने मिलकर उसे बहिष्कृत किया। लेकिन हमीर मुमुक्षु था, उसका हृदय पश्चात्ताप की आग में झुलसता था कि मुझे संतों के पास प्रवेश दो ! किन्तु उसकी विनती ठुकरा दी गई। गोपालानन्द स्वामी ने यह जानकर सबको कहा, 'यदि हमीर सत्संग से दूर होगा, तो बाहर जाकर वह अन्य पाप में फँस जाएगा। यदि उसको पश्चात्ताप ही हुआ है, तो प्रायश्चित्त देकर उसे सत्संग में प्रवेश दे देना चाहिए !' आखिर ऐसा ही हुआ ! ऐसे दयामूर्ति स्वामी, जो कि विशालदृष्टि से मुमुक्षु जीवों का हमेशा हित किया करते थे !

उनके मंडल में साठ संत थे, लेकिन उनकी रुचि को समझकर वर्तन रखनेवाले सर्वनिवासानन्द स्वामी, बालमुकुन्दानन्द स्वामी और विजयात्मानन्द स्वामी मुख्य थे। स्वामी ने इन तीनों को अपने धामगमन के बाद जूनागढ़ जाने

का ही आदेश दिया था, तीनों गुणातीतानन्द स्वामी के पास ही रहे थे।

स्वामी के सांनिध्य में मुमुक्षुओं को अलौकिक लाभ मिलता रहता। एक दिन स्वामी बोटाद पधारे। सफर के कारण वे बहुत थके हुए थे, अत: एक संत उनके पैर तथा शरीर दबाने लगे। स्वामी की थकान दूर होती चली। वे गाढ़ निद्रा में सरक गए। फिर भी संत मध्य रात्रि तक स्वामी की सेवा में लगे रहे। अचानक उनकी नींद उड़ गई, तो उन्होंने देखा कि अब तक यह संत मेरी सेवा से हटे नहीं है ! उन्होंने चकित होकर पूछा: 'अब तक सोये नहीं ?'

'नहीं स्वामी, सारी रात यहीं पर था !' संत ने नम्रतापूर्वक कहा।

स्वामी अत्यंत प्रसन्न हो गए और कहने लगे कि तूने मेरी देह की कसूर मिटाई है, मैं तेरी आत्मा की कमी मिटा दूँगा !' कितना सामर्थ्य !

उस अरसे में सत्संग समाज में अवतारादिक की मान्यताओं के शिकंजे में कसे हुए लोगों के समक्ष ज़ाहिर में श्रीहरि की सर्वोपरिता की बातें नहीं हो सकती थीं, अत: एक बार उमरेठ गाँव में श्रीहरि ने स्वामी को स्वप्न में दर्शन दिया, और कहा, 'हमारे सर्वोपरि स्वरूप के ज्ञान का प्रसार करो ! अन्यथा मैं तुम्हें इसी देह में सौ साल या हज़ार साल रखूँगा!'

स्वामी को श्रीहरि के वचनों की चोट लग गई, और नित्यक्रम के बाद ही सुबह सुबह कथाप्रसंग में रघुवीरजी महाराज, अग्रणी संतों, और शिवलाल सेठ इत्यादि को लक्ष्य करके श्रीहरि के स्वरूप की अद्‌भुत बातें करने लगे :

'सर्व अवतार परब्रह्म पुरुषोत्तम के स्वरूप से प्रकट होते हैं, उनकी शक्ति से संचारित होते हैं, और अंततोगत्वा उन्हीं के स्वरूप में लीन हो जाते हैं। वही परब्रह्म पुरुषोत्तम मनुष्य रूप में श्री सहजानन्द स्वामी के रूप में हमारे आत्यंतिक कल्याण के लिए प्रकट हुए हैं ! और वही हमारे इष्टदेव हैं !'

यह बात सुनते ही अखण्डानन्द ब्रह्मचारी को इतना सदमा पहुँचा कि सभी अवतार श्रीहरि का भजन एक पाँव पर खड़े रहकर करते हैं ?! वह कैसे हो सकता है ? यह तो अवतारादिक का द्रोह है !

ब्रह्मचारी को जैसे काठ मार गया हो ! उनको आघात के कारण ऐसा

दस्त लग गया कि पूरा शरीर अस्वस्थ हो गया, फिर रघुवीरजी महाराज ने उन्हें सांत्वन दिया कि हम भी आप समझते हैं, उसी प्रकार समझते हैं और स्वामी तो योगी हैं, वे तो योगकला में खेलते होंगे !'

फिर रघुवीरजी महाराज ने स्वामी से भी कहा, 'स्वामी, इतनी कठिन बातें मत किया करें।' तब स्वामी ने कहा, 'हमें तो आपके पिताजी ने (भगवान स्वामिनारायण ने) आदेश दिया था। इसी कारण ऐसी स्वरूप निष्ठा की बातें कहते हैं, यदि आप मना करते हैं, तो अब ऐसी बातें नहीं करेंगे।'

इस प्रसंग के बाद स्वामी बहुत उदास हो गए और अक्षरधाम में बिराजमान होने का निश्चय कर लिया।

स्वामी उमरेठ से वरताल पधारे। यहाँ उन्हें कान के पास रतवा (एक रोग) का फोड़ा हुआ। पीड़ा बढ़ती चली। बीस-इक्कीस दिन के उपवास हुए, अतः कृश शरीर, और भी दुर्बल हो गया। सभी चिंतित होकर सोचने लगे कि अब स्वामी का शरीर टिक सकेगा या नहीं ? गाँव-गाँव से स्वामी के स्नेही संत-हरिभक्त उनके दर्शन के लिए आने लगे।

वैशाख मास की पूर्णिमा के उत्सव के बाद दूसरे दिन घर जाने से पहले कुछेक हरिभक्त स्वामी से बिदा माँगने आए। स्वामी शौच के बाद हाथ धो रहे थे। तब बड़ौदा के बापु रायजी, प्रेमानन्द रायजी आदि हरिभक्तों ने स्वामी से प्रार्थना की, 'हे दयालु, अब बड़ौदा की और (कृपा) दृष्टि रखना !'

बड़ौदा के सत्संग समाज का विकास एवं पोषण में स्वामी के अनन्य प्रयास का ही योगदान रहा था, अतः ऐसी प्रार्थना उनके मुख से निकल गई। लेकिन आकाश के समान निर्बंध एवं निर्लेप स्वामी तो पीड़ा से तड़पते हुए भी मुस्कुरा दिए और बोले, 'बापु, अब बड़ौदा की ओर दृष्टि नहीं होगी, अब तो अक्षरधाम में महाराज की ओर या फिर जूनागढ़ के जोगी मूल अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी के समक्ष ही दृष्टि होगी !'

स्वामी के मर्मवचन को उस दिन तो कोई समझ नहीं पाए, लेकिन प्रागजी भक्त तथा शिवलाल सेठ ने स्वामी से इन वचनों का हार्द पूछा। तब स्वामी ने कहा था, 'सर्वोपरि श्रीहरि और उनके धामस्वरूप गुणातीतानन्द स्वामी इन दो दिव्य स्वरूपों से अलग अन्यत्र दृष्टि कहाँ रखें ?'

तो यह थी योगीराज गोपालानन्द स्वामी की स्थिति ! श्रीहरि की इच्छानुसार इस संसार में आपने अनेक कल्याणकारी कार्य किए, लेकिन उनकी दृष्टि तो अपने इष्टदेव सहजानन्द स्वामी और उनके धामस्वरूप गुणातीतानन्द स्वामी की ओर ही थी !

संवत् 1908 (सन् 1852) के वैशाख वदि चतुर्थी, रविवार के दिन स्वामी ने अपनी योगकला से देह का त्याग किया और अक्षरधाम में पधारे। समग्र सत्संग शोक के कारण हतप्रभ रह गया। गुणातीतानन्द स्वामी और बड़े सद्‌गुरुओं ने सबको बहुत सांत्वन दिया। इस प्रकार इस लोक में अनेक जीवों को आत्यंतिक कल्याण का मार्गदर्शन देकर सबको सुखी करके स्वामी श्रीहरि की अखंड सेवा में विराजमान हो गए।

अपने कार्य की स्थूल प्रसादी के रूप में स्वामी ने सत्संग की अमूल्य साहित्यसेवा की थी। श्रीहरि की परावाणी 'वचनामृत' ग्रंथ का संपादन कार्य आपने नित्यानन्द स्वामी, मुक्तानन्द स्वामी और शुकमुनि के साथ मिलकर किया। तथा उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्‌भागवतपुराण, श्रीमद् भगवद्‌गीता तथा वेदस्तुति के गद्य पर संस्कृत भाषा में विद्वत्तापूर्ण भाष्यों की रचना की, तथा उसमें सांप्रदायिक वैदिक परंपरा एवं अक्षरपुरुषोत्तम के सनातन सिद्धांत को प्रकट किया ! उनके तमाम भाष्यों में उन्होंने ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की उपासना करने का शास्त्रोक्त रीति से अद्‌भुत समर्थन किया है।

श्रीहरि के लाड़ले और अक्षरपुरुषोत्तम की शुद्ध उपासना के पुरस्कर्ता इस महान संतवर्य का ऋण चुकाने के लिए समग्र स्वामिनारायण संप्रदाय में एक मात्र शास्त्रीजी महाराज ने श्रीहरि और गुणातीतानन्द स्वामी के साथ गोपालानन्द स्वामी की भी पंचधातु की प्रतिमा भव्य शिखरबद्ध मंदिरों में तथा पट की प्रतिमा हरिमंदिरों में प्रतिष्ठित कर दी हैं ! और इस प्रकार इस महान विभूति के कार्य एवं व्यक्तित्व को उचित श्रद्धांजलि समर्पित की है !

• • •

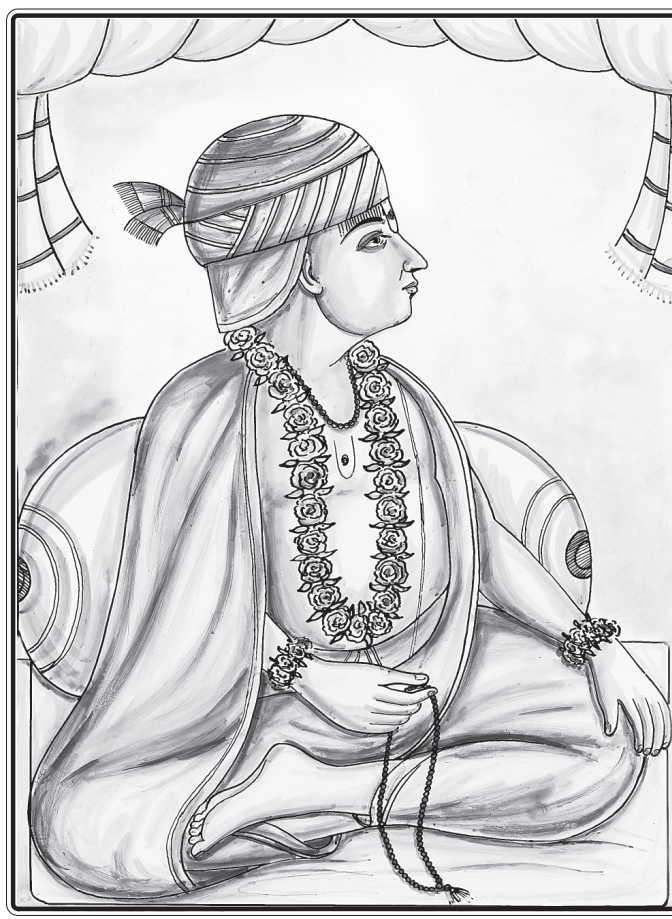

सद्. मुक्तानंद स्वामी

सद्‌गुरु मुक्तानन्द स्वामी

वाला रूमझूम करतां कहान मारे घेर आवोने;
मारा पूरा करवा कोड हसीने बोलावोने।
मारे तम संग लागी प्रीत श्याम सोहागी रे;
में तो तम संग रमवा काज लज्जा त्यागी रे।

इस कीर्तन-गान के साथ शहर के मुख्य मार्गों पर काषाय वस्त्रधारियों का वृन्द भक्तिभरी मस्ती के साथ गुजर रहा था। शहर था गायकवाड़ी शासन की राजधानी बड़ौदा और संतवृन्द के अग्रणी संत थे स्वामी मुक्तानन्दजी ! पाँव में घुंघरु बाँधकर, हाथ में करताल लिए, नजरों में श्रीहरि को बसाकर कीर्तन गानेवाले इस संत के अनोखे तेजस्वी स्वरूप पर हज़ारों आँखें मंडरा रही थीं। संतवृन्द भी इसी कीर्तन का प्रतिघोष करता हुआ भक्ति की मस्ती में गुलतान था। आध्यात्मिकता से सराबोर इस अनुपम दृश्य को देखते ही नगर के सैकड़ों साधु-संन्यासियों या विद्वानों की आत्मा भक्ति के रंग में धुलने लगीं।

मुक्तानन्द स्वामी के नेतृत्व में इस संतमंडली जब राजमहल में पहुँची तब दीवान श्री नारुपंत नाना, राज्यपंडित श्री शोभाराम शास्त्री एवं विद्वद्‌वर्य श्री चीमनरावजी ने संतों का भावसभर सत्कार किया। स्वामी को उचित आसन देकर महाराजा ने भी स्वामी को सादर प्रणाम किया। आसन ग्रहण करने से पहले स्वामी ने संतत्व को शोभा देते हुए सभी को नतमस्तक हो होकर प्रणाम किया !

अब तक संप्रदाय की हाँसी उड़ाने का मकसद रखनेवाले और परस्पर ऐसी ही चर्चा में व्यस्त राज्य का विद्वत्‌समूह स्वामी की अद्‌भुत संतप्रतिभा से क्षुब्ध रह गया था ! श्रीमंत सरकार श्री महाराजा गायकवाड़ के हुक्म से शास्त्रचर्चा का प्रारंभ हुआ। नम्रमूर्ति मुक्तानन्द स्वामी इतनी विशाल विद्वत् सभा का मुकाबला प्रथमबार कर रहे थे, इसी कारण मन में उलझन की अनुभूति कर रहे थे। आखिर वे भी श्रीहरि का बल धारण करके शास्त्रचर्चा के लिए कटिबद्ध हो गए।

शास्त्रचर्चा में स्वामी ने सहजभाव से स्वामिनारायण संप्रदाय की वैदिकता साबित कर दी। और 'कलिकाल में कल्कि अवतार होगा, तथा मात्र भगवन्नाम स्मरण ही एक मात्र कल्याण का उपाय है,' ऐसी भ्रांतियाँ की जड़ उखाड़ दी। उन्होंने स्पष्ट किया कि मोक्ष का प्रमुख साधन तो प्रत्यक्ष भगवान की प्राप्ति ही है। और प्रकट भगवान की उपासना ही आत्यंतिक कल्याण के लिए अनिवार्य है, यह सिद्धांत उन्होंने बुद्धिपूर्वक प्रस्थापित किया, तथा श्रीहरि की सर्वोपरि महिमा की बात भी बताई।

गंगा की धारा के समान स्वामी का अस्खलित वाक्प्रवाह विद्वानों को मौन करने के लिए तथा विस्मित करने के लिए पर्याप्त था। शास्त्रचर्चा में स्वामी ने दिग्विजय प्राप्त किया। भगवान स्वामिनारायण का जय-जयकार हुआ। तेजोद्वष से जलकर राख हुए विभिन्न मतपंथियों के मनोरथ टूटकर चूर हो गए। संप्रदाय की वैदिकता सत्य सिद्ध हुई। राजा और सभाजन भी स्वामी के वक्तव्य के साथ संमत हो गए। अब मुक्तानन्द स्वामी संतमंडल के साथ वरताल होकर श्रीहरि के पास गाँव आदरज पधारे। श्रीहरि भी समाचार सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए, स्वामी को गले लगाया, और बहुत सत्कार किया।

प्रशांत सागर के समान धीरगंभीर, अत्यंत प्रतिभासंपन्न इस साधुचरित महापुरुष का जन्म संवत् 1818 (सन् 1762) के पौष वदी 7 के शुभ दिन गुजरात के अमरेली शहर में हुआ था। पिता का नाम था आनन्दराय और माता थीं राधादेवी। स्वामी को बचपन में सब 'मुकुन्ददास' कहते थे। श्रीमद्भगवद् गीता तथा श्रीमद्भागवत जैसे सत्शास्त्रों का अभ्यास तरुण अवस्था में ही उन्होंने अपने पिता के पास कर लिया था। काव्य-कीर्तन और संगीत में आपकी स्वाभाविक रुचि एवं प्रवीणता थी।

रूप एवं कौशल्य उनको प्रभुप्रदत्त थे। इस बालक में विधि ने न जाने कौन सी विचित्रता रख दी थी, कि जन्म से ही वह संसार से अकल्प्य रीति से उदास रहता था। माँ-बाप उनके ब्याह की सोच रहे थे, तब मुकुन्ददास मोह-माया से दूर कहीं परमानन्द के भोगी बनने की सोच रहे थे। किन्तु आखिर माँ-बाप का किया ही सिद्ध हुआ। मुकुन्ददास परिवार से दूर अमरेली जिले में अमरापर गाँव में अपना गृहस्थ जीवन बिताने लगे। किन्तु ब्रह्मचर्य की उनकी दृढ़ता निष्कलंक रही। गाँव में महात्मा मूलदास के दो

विद्वान शिष्य हाथीराम और जदुराम रहते थे। मुकुन्ददास ने फ़ुर्सत के समय में दोनों के पास बैठकर रामानुज संप्रदाय संबंधी ज्ञान अच्छी तरह प्राप्त किया। प्रभुप्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्यव्रत की महत्ता एवं अनिवार्यता उनकी समझ में आ गई। यह भावना इतनी प्रबल हुई कि गृहस्थजीवन उनको असह्य लगने लगा।

एक दिन वे गृहत्याग करके सच्चे गुरु की खोज में निकल पड़े। ध्रांगध्रा गाँव में एक द्वारकादास नामक महात्मा रहते थे। मुकुन्ददास ने उनके पास अपनी त्यागी होकर ब्रह्मचर्यपालन करने की इच्छा व्यक्त की। महात्मा ने इस सुन्दर और भावनाशील युवान को शिष्य बनाने का लोभ छोड़कर स्पष्ट रूप में ही कह दिया, 'बेटा, मैं तो तुम्हारे हेतुओं को सिद्ध कराने में असमर्थ हूँ, लेकिन वांकानेर गाँव में एक कल्याणदास नामक संन्यासी है। वे पित्तल की कौपीन धारण करते है, और उस पर लोहे का ताला लगाते हैं, इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का कठिन पालन करते हैं, तुम उन्हीं के पास जाओ !'

मुकुन्ददास ऊलटे पाँव वहाँ से भाग निकले, और जल्दी से वांकानेर आ पहुँचे। भक्तों की भीड़ बिखरी ही थी कि मुकुन्ददास उनको एकांत में मिले, 'बाबाजी, मुझे ब्रह्मचर्य पालन करके साधना करनी है, कुछ मार्गदर्शन देंगे ?'

इस छोटे से किशोर का यह अद्‌भुत प्रश्न सुनते ही कल्याणदास रोमांचित हो गए। और बोले, 'बेटा, तू तो अभी छोटा हो, प्रभु ने तुझे कितना रूप दिया है ! और तुझे यह विचार कहाँ से आ गया ? अब तक तूने जवानी का जोश देखा नहीं है, बाद में मालूम होगा तो पछताएगा। '

मुकुन्ददास ऐसी फीकी बातें सुनने के लिए नहीं आए थे, किन्त अब क्या होगा ? इस असमंजस में ही खड़े थे, कि कल्याणदास ने आगे कहा, 'मेरे जीवन की एक घटना सुन ले, आज से करीबन ४० साल पहले मैं काशी जा रहा था। रास्ते में मोरबी गाँव की रहावन पर एक पनहारी से मैंने उज्जैन का रास्ता पूछा। उस स्त्री ने अपने हाथ से जिस प्रकार संकेत करके मार्ग दिखाया वह इशारा मैं आज तक भूल नहीं पाया ! तो बेटा, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य बिलकुल असंभव है, किसी से पूर्णतः पाला नहीं जा सकता !'

कल्याणदास की चोटदार एवं स्वानुभव की वाणी सुनकर मुकुन्ददास उदास एवं निराश हो गए। ईश्वर साक्षात्कार के लिए बिना ब्रह्मचर्य का जीवन

पूर्णतः निरर्थक है, ऐसा सोचकर इस मुमुक्षु युवान ने अपनी लगन के आवेग में मन ही मन आत्महत्या का निर्णय ले लिया। एक विशाल इमली का वृक्ष देखकर उपर चढ़ गए, उपर से कूदने का प्रयास ही किया कि आकाशवाणी सुनाई दी, 'बेटा, मरता है क्यों ? तुझे भगवान जरूर मिलेगा। तू गाँव सरधार जा !'

मुकुन्ददास क्षण का भी विलंब किए बिना बीजली की त्वरा से सरधार पहुँचे। चौराहे पर रामजी मंदिर देखा, वहाँ के महंत तुलसीदासजी के पास मुकुन्ददास ने आश्रय लिया। कैसा सुकुमार और सौम्य शिष्य मिला ! ऐसा सोचकर तथा भगवान ने ही इसे यहाँ भेजा है, ऐसी भावना से इस वयोवृद्ध महंत ने मुकुन्ददास पर पूर्ण विश्वास रखते हुए मंदिर का पूरा व्यवहार उन्हीं को सौंप दिया। गाँववालों ने भी तुलसीदासजी के इस विचार को बधाई दे दी। लेकिन यह क्यों ? मुकुन्ददास को कभी भी न चैन की नींद आती है, न कहीं पर मन लगता है ! उनके भीतर यही विचार चलता रहता था, आकाशवाणी सत्य सिद्ध होगी या नहीं ? मुकुन्ददास अब प्रभुप्राप्ति की तड़पन में एक एक दिन गिनने लगे।

अचानक एक दिन रात्रिसभा में गाँव का एक भी आदमी नहीं आया। थोड़ी सी पूछताछ के बाद जानकारी मिली कि गाँव के चौराहे पर रामानन्द स्वामी नामक एक समर्थ एवं कृष्णभक्त संत आए हैं। मुकुन्ददास को भी प्रेरणा हुई, क्यों न उनका दर्शन भी किया जाए ? दूसरे दिन रात के समय काम से जल्दी ही निपट कर मुकुन्ददास रामानन्दजी की कथा सुनने पहुँच गए, किन्तु छिप कर एक गलियारी में खड़े रहना ही मुनासिब समझा। इतने में एक पहेरदार निकला और किसीको छिपा हुआ देखकर जोर से हाँक लगाई। मुकुन्ददास ने जल्दी से किन्तु फुसफुसाते हुए अपनी पहचान दी और उसे समझा दिया कि मैं मेरे गुरु के डर से यहाँ छिपकर स्वामी की कथा सुनता हूँ।

कथा समाप्त हुई, लोग बिखर गए। एकांत पाते ही मुकुन्ददास रामानन्द स्वामी के पास दौड़ आए और गोद में मस्तक रखते ही सिसक सिसक कर रो दिये ! स्वामी की दिव्य प्रतिभा और अलौकिक वाणी से उनकी अन्तरात्मा में कब का उजाला हो गया था कि यही वह विभूति हैं,

जिसका आकाशवाणी ने जिक्र किया था ! उन्होंने ब्रह्मचर्यव्रत सिद्ध करा कर अपनी शरण में लेने की मुकुन्ददास ने प्रार्थना की। स्वामी ने उन्हें भरपूर सांत्वना दी। मस्तक पर वात्सल्यपूर्ण स्पर्श करके परिचय पूछा। मुकुन्ददास ने विस्तार पूर्वक सबकुछ बता दिया, मुकुन्ददास को मार्गीपंथ के आश्रित जानकर स्वामी सोच में पड़ गए और कहा, 'तुम तो गाँव के प्रतिष्ठित संन्यासी तुलसीदासजी के शिष्य हो, अत: उनके संमतिपत्र के बिना तो हम तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकते। यदि हम तुम्हें रख लें, तो इस गाँव छोड़कर हमें अभी-अभी भागना पड़े !'

मुकुन्ददास इस अस्वीकार को सुनते ही आघात से दिग्मूढ़ हो गए। मानो कि शिर पर आकाश टूट पड़ा हो ! भारी नि:श्वास के साथ वे मंदिर लौटे।

लेकिन उन्होंने आज अड़िग निर्णय ले लिया था, कि किसी न किसी प्रकार गुरु का संमतिपत्र लेना ही पड़ेगा, और स्वामी के पास पहुँचना ही पड़ेगा ! लेकिन गुरुजी वैसे तो छुट्टी नहीं देंगे। उन्होंने युक्ति की, मंदिर की वस्तुएँ, रसद की सामग्री आदि को ऐसे लुटाने लगे, कि गुरुजी देखते ही रह गए ! सभी तीर्थवासी साधु-संन्यासी भी मुकुन्ददास की 'उदारता' से चकित थे।

तुलसीदासजी ने मुकुन्ददास को डाँटा, 'मुकुन्द, ये क्या फितूर चलाया है, पूरा मंदिर लुटाना है क्या ?'

मुकुन्ददास ने पट से कहा, 'मंदिर मेरा हैं, चाहे सो करूँ, आपको क्या लेना देना ?!'

तुलसीदास ने सोचा, यह जरूर पागल हो गया है, या फिर उद्दंड ! इसी कारण दर-दर भटकता होगा। उसने तुरन्त कहा, 'ऐसा है, तो दफ़ा हो जा यहाँ से ! मुझे तेरा एक पलभर भी सहारा नहीं लेना है !'

मुकुन्ददास ने कहा, 'छुट्टी देनी हो तो संमतिपत्र में लिख कर दीजिए !' गुरुजी ने तुरंत लिख दिया और मुकुन्ददास वहाँ से रामानन्द स्वामी के पास पहुँचने के लिए दौड़ पड़े ! कुछ तलाशी के बाद मालूम हुआ कि स्वामी बंधिया गाँव पधारे हैं। मुकुन्ददास वहाँ पहुँचे। उनकी मुमुक्षुता एवं गरज देखकर स्वामी अत्यंत प्रसन्न हुए। लेकिन कसौटी तो अभी बाक़ी थी ! स्वामी ने मुकुन्ददास की तत्परता देखने के लिए गाँव में

मूलुभा दरबार के खेत में उनको हल चलाने की आज्ञा दी। मुकुन्ददास तैयार ही थे ! हल चलाते रहते और भजन करते रहते, लेकिन कभी ऐसा काम किया ही नहीं था, इसलिए कहीं पर लग जाने के डर से मूलुभा ने ही स्वामी से आदेश दिलवाया और खेत में काम करने की मना हो गई ! किन्तु अभी तक कसौटी पूर्ण नहीं हुई थी ! स्वामी ने मुकुन्ददास को बुलाकर कहा, 'तुम विवाहित हो, अतः तुम्हारे धर्मपत्नी की, तुम्हारे स्वजनों की भी संमति लिखित रूप में चाहिए। '

मुकुन्ददास तुरन्त पहुँचे अपने घर ! उनको देखकर सब अत्यंत खुश हुए, लेकिन दो दिन में ही घरवालों की भ्रमणा टूट गई ! मुकुन्ददास पागल सी मनोदशा लिए घूमते रहते। किसी के पालने से किसीके शिशु को उठाकर किसी और के पालने में रख देते ! किसी की खटियाँ ऊलटकर रख देते या फिर अन्य किसी के आंगन में जाकर रख देते। और 'राम कटाकट महुडुं भांग्युं' ऐसा असंबद्ध प्रलाप करते हुए गाँव की गलियों में घूमते रहते। मुकुन्ददास का ऐसा पागलपन देखकर परिवारजनों में भारी आघात पहुँचा था। सब भारी चिन्ता में रहने लगे, आखिर उनसे छुटकारा पाने के लिए सभी ने मिलकर उसे छुट्टी देते हुए लेखित संमतिपत्र दे दिया ! मुकुन्ददास इससे अधिक क्या चाहते ! वे खुशहाल होकर पुनः स्वामी के पास पहुँच गए।

मुकुन्ददास की मुमुक्षुता और मोक्ष की गरज देखकर स्वामी बहुत प्रसन्न हुए और संवत् 1842 (सन् 1786) की वसंत पंचमी के दिन स्वामी ने बंधिया गाँव में (जिला राजकोट) उन्हें भागवती दीक्षा दी, और 'मुक्तानंद' नाम धारण करवाया ! मार्गीपंथ के मुकुन्ददास आज वैष्णवी संत स्वामी मुक्तानन्दजी बने !

स्वामी की आज्ञा सें मुक्तानन्दजी और देवानन्दजी नाम के अन्य सन्त कच्छ प्रदेश में संस्कृत के अभ्यास के लिए पधारे। यहाँ भुज नगर में अभ्यास करते, और मुमुक्षु जनों को उपदेश भी करते। कच्छ के दीवान सुन्दरजीभाई, हीरजीभाई, गंगाराम मल्ल आदि भक्त स्वामी के संबंध में आए। संस्कृत अभ्यास के बाद दोनों स्वामी के पास वापस लौट आए और मांगरोल बंदरगाह के पास लोज नामक गाँव में रामानन्द स्वामी के आश्रम में रहने

लगे।

उनको एक आदर्श संत जानकर गुरु रामानन्द स्वामी ने मुक्तानन्दजी को 50 संतों के एक मंडल के अग्रणी नियुक्त किये, और आश्रम के अध्यक्ष भी बनाए। साधुगुण संपन्न मुक्तानन्दजी सब को संभालते, सेवा-भक्ति में पिरोते रहते और कथावार्ता करके सबको सुखी करते। लोज और आसपास के गाँवों मैं भी उन्हीं के प्रभाव के कारण सत्संग बढ़ने लगा।

इसी अरसे में भगवान स्वामिनारायण वर्णीवेश नीलकंठ के रूप में लोज पधारे। मुक्तानन्द स्वामी ने आश्रम में अत्यंत स्नेहपूर्वक उनका सत्कार किया। वर्णी के पाँच तत्त्व विषयक प्रश्नों के उत्तर भी संतोषकारक ढंग से दिए। वर्णीराज भी अत्यंत प्रसन्न हुए। मुक्तानन्द स्वामी ने भी उन्हें महा प्रतापी समझकर अपने आश्रम में ही रोक लिए और अपने गुरु स्वामी रामानन्दजी की महिमा भी कही।

विशेष परिचय के बाद मुक्तानन्द स्वामी वर्णी की अत्यधिक महिमा समझने लगे, और आश्रम के अध्यक्ष होते हुए तथा वयोवृद्ध होते हुए भी वर्णीराज की अनुवृत्ति को आध्यात्मिक प्रगति की धरोहर समझकर उसके अनुसार वर्तन भी रखने लगे।

नीलकंठ वर्णी ने लोज में स्त्री-पुरुष की सभा अलग अलग करने की आज्ञा दी। तथा आश्रम की दिवार का एक छिद्र जो कि पड़ोस के गृहस्थ के रसोईघर में पड़ता था और वहाँ से अग्नि के अंगारे देने-लेने का व्यवहार चलता था वर्णी ने उसे भी बंद करा दिया। ब्रह्मचर्यपालन के हिमायती मुक्तानन्द स्वामी ने वर्णी के दोनों आदेश सहर्ष स्वीकार कर लिए। उन्होंने वर्णीराज को वैष्णवी त्यागी का वेष दिया और 'सरजूदास' नामाभिधान किया था। योगविद्या में वर्णी की प्रवीणता देखकर संतों को योगाभ्यास कराने की उन्होंने वर्णी को प्रार्थना की। और स्वयं भी संतों के साथ वर्णीराज का ज्ञानोपदेश श्रद्धापूर्वक सुनने को तैयार रहते ! तपःकृश सरजूदास की देखभाल स्वामी बहुत भक्तिभाव से रखते। दोनों की वय में करीबन तेईस साल का फासला था। उम्र में इतने बड़े होने के बावजूद स्वामी इतनी सरलता और नम्रता से वर्णीराज के समक्ष पेश आते कि उनकी निर्मत्सरता सबकी आँखों में आदर बनके छलक उठती !

एक दिन स्वामी देहादिक की शुद्धि से निपटकर ध्यान लगाकर बैठे। पास में ही उन्होंने एक रंगी हुई तुंबी धूप में सुखाने के लिए रखी थी। अचानक कुत्तों की भौंकने की आवाज़ आई। कुत्ते आकर तुंबी बिगाड़ सकते हैं, ऐसा सोचकर स्वामी ने ध्यान से जागकर अपनी छड़ी से कुत्ते को भगा दिया, दूर से इस चहल-पहल को देखते हुए सरजूदास स्वामी के पास आए और पूछा 'स्वामी, दैवत किं वा ? किं वा ध्यान में किं वा तुंबीपात्र में ? किं वा दोउ समान ?'

मुक्तानन्द स्वामी तुरंत इस प्रश्न के मर्म को ताड़ गए और शर्म के मारे मौन ही रह गए।

वर्णीराज का प्रभाव इन संतों पर कितना ठोस था, इसी बात का प्रमाण इस घटना में मिलता है !

रामानन्द स्वामी ने सरजूदास को भागवती दीक्षा देकर 'सहजानन्द स्वामी' नामाभिधान किया। और धामगमन से पहले रामानन्द स्वामी ने सहजानन्द स्वामी को ही धर्मधुरा सौंपने का निर्णय किया। उन्होंने बड़े बड़े संतों-भक्तों को बुलाकर सहजानन्द स्वामी की महिमा कही, कि मैं तो डुगडुगी बजाने वाला हूँ और खेल दिखानेवाले तो ये सहजानन्द स्वामी है। इस प्रकार बहुत बातें करके सबकी संमति ली। तब मुक्तानन्द स्वामी ने भी विशाल हृदय रखते हुए संमति दी।

उनके मन में तनिक भी संदेह नहीं हुआ कि यह पद मुझे मिलना चाहिए था ! तो सहजानन्द स्वामी भी स्वामी की अत्यंत आमान्या रखते थे और रामानन्द स्वामी के स्थान पर अपने गुरु के समान आदर देते थे।

रामानन्द स्वामी के धामगमन के बाद श्रीहरि ने आबालवृद्धों को, विद्वानों अशिक्षितों को, छोटे-बड़े सब को समाधि प्रकरण चलाते हुए दिव्य अनुभूति कराने का सिलसिला शुरु किया था। इसकी जानकारी पाकर मुक्तानन्द स्वामी भुजनगर में रहते हुए अत्यंत व्याकुल हो गए थे। उनको लगा कि सहजानन्द स्वामी रामानन्द स्वामी स्थापित संप्रदाय की जड़ ऊखाड़ ने बैठे हैं। वे सहजानन्द स्वामी को उलाहना देने आ गए। किन्तु कालवाणी गाँव में रामानन्द स्वामी ने उनको दिव्य दर्शन दिए। उन्होंने महाराज की अपरंपार महिमा बताई कि ये तो साक्षात् पुरुषोत्तम नारायण हैं, तब उनकी

अशांति दूर हुई। महाराज को गोद में उठाकर स्वामी ने रामानन्द स्वामी की गद्दी पर बिठाए और पूजा करके 'जय सद्‌गुरु स्वामी' की आरती उतार कर सुन्दर कीर्तन की रचना की:

'भ्रमणा भांगी रे हैयानी, नथी ए वात केने कह्यानी,
वीती होय ते रे जाणे, अणसमज्या मन ईर्ष्या आणे। !'

अर्थात् 'अब मेरे मन की सभी भ्रमणा दूर हुई है। यह बात इतनी अमूल्य है, कि किसी को बताने की नहीं, अनुभूति करने की ही चीज़ है ! जो समझ जाता है, वह सुखी-सुखी हो जाता है, नहीं समझता वही मन में ईर्ष्या किया करता है। '

इस प्रसंग के बाद महाराज ने मुक्तानन्द स्वामी को भी एक छोटी सी छड़ी दी थी। स्वामी छड़ी से जिसका स्पर्श करते उसे तुरंत समाधि लग जाती !

मुक्तानन्द स्वामी आदि संत श्रीहरि की आज्ञा से गाँव गाँव सत्संग विकास के लिए विचरण किया करते थे, किन्तु दुष्टलोगों से उनको भारी कष्ट भुगतने पड़ते थे।

एक गाँव में एक द्वेषी वैरागी ने स्वामी और ब्रह्मानन्द स्वामी दोनों को पकड़ कर एक खंभे के साथ बाँध दिए। और दोनों के नाक-कान काटने की विकृत मुराद से अपना छरा घिसने बैठ गया।

ब्रह्मानन्द स्वामी ने दु:खी स्वर में कहा, 'स्वामी, यह यदि हमारे नाक-कान काट लेगा तो लोग क्या कहेंगे कि इन्होंने अवश्य कोई बुरा काम किया होगा, जो नाक कटवाने की नौबत आ गई !'

तब मुक्तानन्द स्वामी सहज स्वभाव से बोले, 'पूर्वजन्मों में हमने कई बार अपने स्त्री-पुत्रादि के कारण नाक-कान कटवाएँ होंगे, तो इस जन्म में महाराज के लिए भले ही कट जाएँ। हमारी इज्जत महाराज के हाथों में हैं, तो वे अवश्य रक्षा करेंगे। '

यह बात चलती ही थी, कि राघव जत नामक एक आदमी वहाँ से गुजरा। उसने वैरागी को छरा घिसने का कारण पूछा, तो उसने पूरी बात बता दी। राघव ने देखा कि स्वामिनारायण के निर्दोष संतों को यह कसाई जरूर दु:ख देगा। उसने वैरागी को बुरी तरह डाँटा और संतों को बंधन से मुक्त किए, फिर सुरक्षा के लिए गाँव की सीमा तक संतों को बिदा देने के लिए

साथ में आया।

ऐसी ही एक अन्य घटना बन गई। मुक्तानन्द स्वामी की साधुता का इतना तेजोद्वेष हुआ। कि द्वेषियों ने कातिल ज़हर चन्दन में मिलाकर स्वामी के शरीर पर अर्चा के रूप में लगा दिया ! महाराज की कृपा से स्वामी बच तो गए, लेकिन अर्चा करने वाले की चमड़ी जल-भुन कर उखड़ने लगी !

ऐसे-ऐसे अनंत दुःख स्वामी एक मात्र अपने इष्टदेव को प्रसन्न करने के लिए सहन करते रहे। स्वामी की साधुवृत्ति, निर्मानीभाव और हितकारी वाणी से वे जहाँ जहाँ जाते, लोगों को अत्यंत सद्भाव हो जाता। सत्संग के प्रति आकर्षण बढ़ता। स्वामी भी सब को बातें कहकर श्रीहरि का आश्रय कराते। सुरत, अहमदाबाद आदि शहरों में भी उन्होंने सत्संग का प्रवर्तन बहुत गहराई से किया था।

एक दिन स्वामी अपने मंडल के साथ अहमदाबाद पधारे। और दरियाखान के घुम्मट में साबरमती नदी के तट पर पड़ाव डाला। नदी में स्नान, वृक्षों की छाँव में ध्यान और कथावार्ता यही संतों का नित्यक्रम था। आध-पासेर भिक्षान्न खा लेते और यदि भिक्षान्न नहीं भी मिलता तो उमंग से उपवास भी करते थे !

इस प्रकार मुक्तानन्द स्वामी ने वरताल तथा आसपास के प्रदेश में, तथा गुजरात के कानम इलाके में (बड़ौदा तथा भरुच जिला) सत्संग का बहुत प्रवर्तन किया। श्रीहरि की आज्ञा से बड़ौदा में शास्त्रार्थ जीत कर तथा छोटी काशी समान जामनगर में भी विद्वानों को जीत कर श्रीहरि की प्रसन्नता प्राप्त की थी। जामनगर में तो नित्यानन्द स्वामी जैसे समर्थ विद्वान उपस्थित होते हुए भी श्रीहरि ने मुक्तानन्द स्वामी को ही शास्त्रचर्चा करने का आदेश दिया था ! श्रीहरि की उपस्थिति में ही उन्होंने राज्यपंडितों को माहत किए थे, और संप्रदाय की वैदिकता शास्त्रोक्त रीति से प्रस्थापित की थी।

समय बीतने पर स्वामी को महाराज की विशेष महिमा समझ में आती रही। उनकी काव्यरचनाओं से भी यह तथ्य हमारे समक्ष उजागर होता है।

जब उन्हें श्रीहरि के सर्वोपरि स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हुआ, तब 'सुखदायक रे, स्वामी सहजानन्द, प्रकट पुरुषोत्तम श्रीहरि' तथा 'माई री मैंने पुरुषोत्तम वर पायो' जैसे कीर्तन रचे।

मुक्तानन्द स्वामी अपनी पूजा में रामानन्द स्वामी की कौपीन का आड़बंध प्रसादी के रूप में रखते और नित्यदर्शन करते। एक दिन उनकी पूजा में चैतन्यानन्द स्वामी चरणस्पर्श करने के लिए आए। तब स्वामी ने रामानन्दजी का प्रसादी वस्त्र चैतन्यानन्दजी को दर्शन के लिए दिया। तो उन्होंने झट से अपनी आँखे मूंद लीं। स्वामी ने कारण पूछा तो उन्होंने कहा, 'मेरी तो पतिव्रता जैसी भक्ति है !'

मुक्तानन्द स्वामी को यह सुनते ही चोट लगी, और प्रसादीवस्त्र पास में जलती अँगीठी में डाल दिया। उनके मन में ऐसा दु:ख हुआ कि मेरे जीवन में इतनी कसूर क्यों रह गई ? उन्होंने उसी समय कीर्तन रचा :

'छांडी के श्रीकृष्ण देव, ओर की जो करूँ सेव,
काटी डारो कर मेरो, तीखी तलवार से।'

मुक्तानन्द स्वामी ने पतिव्रता भक्ति से और प्रकट स्वरूप की उपासना के बल से अनेक अद्‌भुत पदों की रचना की हैं। रामानंद स्वामी के अनेक शिष्यों को भी उन्होंने महाराज के प्रकट स्वरूप की महिमा समझाकर नि:संशय किए थे।

एकबार लोया गाँव में शाकोत्सव का आयोजन हुआ था। गाँव गाँव से हज़ारों भक्त महाराज की महिमा सुनकर यहाँ आ पहुँचे थे। महाराज स्वयं बड़े बड़े चुल्हे पर शाक बनाने लग गए ! छोटी सी धोती पहनकर विशाल बर्तनों में भोजन बनाने की सेवा में ऐसे तल्लीन हुए थे कि न पहचाननेवाला तो उन्हें रसोईया से अधिक समझ ही न सकता ! क्योंकि महाराज के हाथ हल्दीवाले थे, उनका शरीर पसीने से तरबतर था। ऐसा विचित्र रूप देख कहानदास आदि दर्शनार्थियों के मन में संदेह हुआ कि 'क्या भगवान कभी ऐसे हो सकते हैं ?'

संशयों के कारण बुआ गाँव के कहानदास आदि तो बिना दर्शन ही वहाँ से घर लौटने को तैयार हो गए ! मुक्तानन्द स्वामी को यह समाचार मिला तो वे उनके पास पहुँच गए। उनको श्रीहरि की यथार्थ महिमा समझाकर महाराज के स्वरूप में दिव्यभाव की दृढ़ता करवाई। स्वामी ने समझाया कि 'जब भगवान मनुष्य रूप में पधारते हैं, तब उनकी सभी क्रिया मनुष्य जैसी ही होती है, लेकिन वे तो पूर्णत: दिव्य ही है !'

ऐसी कई बातों से सबके मन का समाधान हो गया। महाराज के स्वरूप का दृढ़ निश्चय भी हो गया। मुक्तानंद स्वामी ने इस प्रकार कई हरिभक्तों को महाराज के प्रकट स्वरूप का निश्चय कराया, और दिव्यभाव की दृढ़ता भी कराई थी।

मुक्तानंद स्वामी को भी महाराज की प्रत्येक क्रिया में अनन्य दिव्यभाव था। एकबार महाराज ने छोटा सा त्रखला हाथ में लेकर तोड़ा। स्वामी ने यह देखा और पूछा, 'महाराज, आपने यह क्या चरित्र किया?' महाराज ने कहा, 'स्वामी, हमने एक ब्रह्मांड का प्रलय किया, और एक ब्रह्मांड का निर्माण किया। ' स्वामी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। भगवान की इतनी छोटी सी क्रिया में भी ऐसा दिव्यभाव ही मुमुक्षु की श्रेष्ठ सिद्धि है !

जन्म से ही जिनको साहित्य, संगीत एवं कला सहज थी, मार्गीपंथ में जिनका अत्यधिक विकास हुआ था, उनकी ऐसी कलाओं का विकास संप्रदाय में आने के बाद बहुत हुआ ! वे महाराज की मूर्ति के एवं उपदेश के सुंदर पदों की रचना करते, और उसे मधुर कंठ से भक्तिपूर्वक गाते थे ! कभी तो वे पाँव में घुंघरु बाँधकर नृत्य करते, और नृत्य करते ही पाँव के अंगुठे से रंगोली बनाते। ऐसी अप्रतिम भक्ति इनके जीवन में सहज ही देखने को मिलती है !

स्वामी की बहुमुखी प्रतिभा में खास करके उनकी वाणी और उनके सौम्य रूप के प्रति सब अत्यंत आकृष्ट होते थे। इसी कारण वे हमेशा अपने शरीर पर उपवस्त्र पहने रखते थे। एसा कहा जाता था कि चंद्र की कांति में उनका रूप विशेषरूप से निखर जाता था।

एकबार महाराज ने मुक्तानंद स्वामी से उनकी विशेषता पूछी, उन्होंने विवेकपूर्वक कहा, 'चाहे कैसा भी मलिन आशयवाला और पत्थर सा कठोर आदमी क्यों न हो, फिर भी मेरी बात सुनकर उसका अंत:करण कोमल फूल जैसा हो जाता है, और वह भगवद् सन्मुख हो जाता हैं। आपकी कृपा से मेरी वाणी में ऐसा प्रभाव है।' स्वामी की इसी विशेषता को गुजरात के उत्तम कवि कवीश्वर दलपतराम ने 'गंगा के प्रवाह' की उपमा दी है।

वे नाड़ीपरीक्षक भी थे। जब जब महाराज के शरीर में कुछ कमज़ोरी दिखाई देती, तब महाराज मुक्तानन्द स्वामी को नाड़ी देखने बुलाते थे।

स्वामी भी उसे महाराज की अद्‌भुत मनुष्यलीला समझकर भक्तों के सुख के हेतु महाराज को स्वस्थ होने के लिए प्रार्थना करते।

उनकी सहनशीलता की एक अद्‌भुत घटना हमें आज भी प्रेरणा देती हैं। स्वामी की शारीरिक परिस्थिति नादुरस्त थी। महाराज ने उनको सांप्रदायिक साहित्य के लेखन की आज्ञा दी थी। इसी कार्य में व्यस्त होने के कारण वे अपने शरीर की तनिक भी चिंता नहीं करते थे।

एक बार उनके आसन पर गोपालानन्द स्वामी और नित्यानन्द स्वामी उनकी खबर पूछने आये। स्वामी उस समय भोजन ले रहे थे। भोजन के बाद उसी खिचड़ी की प्रसादी नित्यानन्द स्वामी ने ली। मुँह में रखते ही वे चौंक गए। खिचड़ी थूकते हुए वे बोल उठे, 'इतनी सी खिचड़ी में इतने कंकड़ ! आपका शिष्य पकाने से पहले इसे साफ नहीं करता क्या ?' लेकिन स्मित करते हुए स्वामी तो बिलकुल मौन रहे। नित्यानन्द स्वामी ने आगे पूछा, 'आप को ऐसा भोजन कौन कराता है ?'

उन्होंने फौरन स्वामी के सेवक को बुला लिया, उनको उलाहाना देते हुए कहा, 'क्या तुम स्वामी को रोज ऐसा भोजन करवाते हो? अन्न को कुछ साफ तो किया करो !' तब उसने बहाना बताते हुए कह दिया, 'मैं यदि अनाज साफ करने रहूँ तो फिर लिखूँ कब? मुझे तो कोठार में से जैसा मिलता है, उसीको पका लेता हूँ, इससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता। '

ऐसा उद्धत एवं उद्दंड उत्तर सुनकर गोपालानन्द स्वामी ने अनुपमानन्द स्वामी को बुलाए, और मुक्तानन्द स्वामी को अनुकूल रसोई बनाने की आज्ञा दी। जब नित्यानन्द स्वामी ने मुक्तानन्द स्वामी से पूछा, 'ऐसा कितने दिनों से चलता है?' स्वामी ने कहा, 'मैं तो हमेशा ऐसा ही भोजन करता रहा हूँ। '

तब नित्यानन्द स्वामी चकित रह गए और सोचने लगे कि 'ऐसा तो मुक्तानन्द स्वामी ही सहन कर सकते हैं, दूसरों का काम नहीं !'

स्वामी की एक और विशेषता थी, उनकी निर्व्याज प्रेम बरसाने की मातृवत् वत्सलता ! छोटे-छोटे संत भूख के कारण बिना समय के ही कोठार में सूखी रोटी खा रहे थे। उस समय एक ही बार भोजन करने की महाराज की आज्ञा थी। जब कि विद्यार्थी संतों के लिए यह आज्ञा नहीं थी। मुक्तानन्द स्वामी अचानक वहाँ से निकले, और संतों को रोटी खाते देख लिया। डर

के मारे संतों के हाथ से रोटी के टुकड़े जमीन पर गिर गए। स्वामी स्तब्ध होकर सोचने लगे कि 'मुझे देखकर इन संतों के हाथ से रोटी के टुकड़े गिर गए, क्या यह कोई अच्छा लक्षण है ? मुझ से साधु से इनको इतना डर क्यों? संत तो माँ के समान होने चाहिए !'

इस प्रकार अपने आपको धिक्कारते हुए वे संतों के निकट गए, और प्रेम पूर्वक पूछा, 'क्या कुछ भोजन है ? आज तो मुझे भी जोरों से भूख लगी है। मैं भी आपके साथ ही खा लूँगा। '

सभी संतों को भारी सांत्वना मिली और स्वामी को भी संतों ने रोटी के टुकड़े दिए। सब खुश थे कि अब कोई चिंता नहीं है !

एक बार मुक्तानन्द स्वामी गाँवों में सत्संग प्रचार के लिए विचरण कर रहे थे। एक दिन महाराज की चिठ्ठी आई, जिसमें लिखा था कि आप सब अब तक अनेक कठिन व्रतों का पालन करते हैं, किन्तु अभी तो हम इनसे भी अधिक कठिन आदेश देनेवाले हैं, अतः आप सावधान रहें ! यह पत्र पढ़ते ही स्वामी ने सोचा कि कठिन से कठिन नियम तो कौन से हो सकते हैं ? उन्होंने अपने आप नीम के पत्ते को रगड़कर, उसका रस निकालकर पीना शुरु कर दिया। महाराज को इस बात का पता चला, तब स्वामी की नियम पालन की तत्परता देखकर अत्यंत खुश हुए !

स्वामी नियमपालन में जितने अड़िग थे, उतने ही वे देशकालानुसार वचनपालन में विवेक भी रखते थे। एकबार स्वामी संतमंडल के साथ मारवाड़ देश में भ्रमण करने गए। संतों को सर्वत्र भारी कठिनाईयों का सामना करना पड़ रह था। विरोधियों का विरोध, भिक्षा में मिलता हुआ अपर्याप्त अन्न, शारीरिक मार, और जब भिक्षा न मिले, तब दो या तीन तीन दिन तक होते हुए उपवास आदि कष्टों की तो बात ही कुछ और थी !

एक घटना इस प्रकार घटी, कि संतों को तीन दिन तक उपवास हुए। उपवास के चौथे दिन भगवान की प्रेरणा से एक ब्राह्मण संतों के पास आ पहुँचा। मुक्तानन्द स्वामी ने उसे कुछ ज्ञान-उपदेश दिया तो ब्राह्मण को कुछ सद्भाव जगा और संतों को तीन तीन दिन से भूखे जानकर उसने तत्काल खिचड़ी का प्रबंध कर दिया। श्रीहरि ने संतों को ऐसा भी नियम दे रखा था, कि भोजन में घी नाम मात्र भी न होना चाहिए !

स्वामी ने ब्राह्मण को स्पष्ट सूचना दे रखी थी कि खिचड़ी में घी का अंश भी मत डालना ! लेकिन ब्राह्मण ने भगवान को नैवेद्य लगाने के लिए थोडी-सी खिचड़ी में थोड़ा-सा घी डाल दिया। वही प्रसाद खिचड़ी के बड़े पात्र में मिला दिया गया, और संतों की पंक्ति में वही प्रसाद परोसा गया। घी की सुगंध आते ही वरिष्ठ संत स्वामी आत्मानन्दजी बोल उठे: 'अनिडो ! घी की गंध आती है !' पूरा संत समुदाय स्तब्ध रह गया ! जो कि तीन दिन से भूख से तड़पता था ! मुक्तानन्द स्वामी ने तुरंत स्थिति संभाल ली। द्विधाग्रस्त ब्राह्मण ने नम्रतापूर्वक कहा, 'स्वामीजी, मैंने खिचड़ी में घी बिलकुल ही नहीं डाला था। ये तो भगवान को भोग लगाया हुआ प्रसाद ही खिचड़ी के बड़े बर्तन में मिला दिया था। अत: थोड़ी सी खिचड़ी से घी की सुगंध आती होगी !'

मुक्तानन्द स्वामी आज धर्मसंकट में फँस गए ! एक ओर श्रीहरि का वचन, दूसरी ओर भूखे संतों की वेदना ! आखिर उन्होंने श्रीहरि का स्मरण करके निर्णय दे दिया, 'संतों ! आप प्रेमपूर्वक भोजन ले लीजिए, यदि महाराज वचनलोप के कारण कुछ प्रायश्चित्त देंगे तो मैं उसे मेरे सर पर ले लूँगा ! लेकिन आप भोजन में विलंब न करें !' हाँ, वचन पालन की मूर्ति के समान स्वामी आत्मानन्दजी ने तो भोजन नहीं किया, लेकिन अन्य संतों को मुक्तानन्द स्वामी ने भोजन से तृप्त किए !

इस बात का पता जब श्रीहरि को चला तो वे दोनों मुख्य संतों पर बहुत प्रसन्न हुए, और कहा, 'आत्मानन्द स्वामी के त्याग के आगे मुक्तानन्द स्वामी की सत्संग की लाज-मर्यादा बढ़ जाती हैं ! क्योंकि स्वामी ने संतों को निभा लिए !' 'सत्संग की माँ' के समान मुक्तानन्द स्वामी के जीवन में ऐसे तो अनेक प्रसंग मिलते हैं, जिसके अद्‌भुत गुणों की सौरभ हमें आज भी प्रफुल्लित करती हैं।

'वचनामृत' में भी महाराज ने मुक्तानन्द स्वामी की अनेक बार प्रशंसा की है, 'मुक्तानन्द स्वामी को हमने सर्व प्रथम लोजपुर में देखे थे, उस समय उनमें जितनी श्रद्धा और महिमा थीं उतनी ही आज दिन तक है, परंतु उसमें तनिक भी कमी नहीं दिखती है !' (वच. सा. 3)

'मुक्तानन्द स्वामी को हमारी प्रसन्नता प्राप्त करना तथा हमारा विश्वास

वही मुख्य अंग हैं। ' (वच. ग. अं. 28)

महाराज के स्वधामगमन के बाद स्वामी का मन कहीं लगता नहीं था। महाराज ने उनको आज्ञा दी थी कि 'आप अपने संप्रदाय संबंधी और अपने इष्टदेव संबंधी जो वाणी तथा शास्त्र उसे देह पर्यंत रचते रहे और आपका शरीर जब तक रहे, तब तक आपको यही आज्ञा है !' (ग. म. 58)

इस आज्ञा के अनुसार स्वामी जीवन के अंतपर्यंत शास्त्र रचना करते रहे थे ! महाराज के स्वधामगमन के बाद स्वामी का स्वास्थ्य भी कमज़ोर होता जा रहा था।

एक दिन तो ऐसा हुआ कि लिखते लिखते स्वामी के हाथ से कलम गिर पड़ी ! अब गोपालानन्द स्वामी ने स्वामी से निवेदन किया कि 'स्वामी, अब आप कब तक लिखना चाहते हैं ? हमारी विनती सुनो, आपकी साहित्य रचना की सेवा हम दूसरों को देंगे, लेकिन अब आपकी आराम की अनिवार्य आवश्यक्ता है ! आप तो महाराज की आज्ञा का यथार्थ पालन आज तक करते रहे हैं !' स्वामी ने गोपालानन्द स्वामी की विनती स्वीकार ली और अपना 'धमाख्यान ग्रंथ' अपूर्ण रहा था, उसे पूर्ण करने का बीड़ा नित्यानन्द स्वामी ने उठा लिया। मुक्तानन्द स्वामी ने प्रसन्न होकर नित्यानन्द स्वामी को हार पहनाया और बोले, 'आप मेरे सच्चे सेवक है !'

मुक्तानन्द स्वामी ने अब घाम में जाने का संकल्प किया। आचार्य रघुवीरजी महाराज तथा गोपालानन्द स्वामी के साथ संत्सग विकास संबंधी परामर्श करके 72 वर्ष की आयु में संवत् 1886 (सन् 1830) के अषाढ वदी एकादशी के दिन मध्याह्न समय सब संतो-हरिभक्तों की उपस्थिति में भगवद् भजन एवं स्मरण करते हुए उन्होंने आँखें मूँद लीं, और अक्षरधाम में महाराज के पास बिराजमान हो गए।

उनके दिव्य जीवन कार्य की स्मृति आज भी उनके रचे हुए संस्कृत साहित्य के 7 और प्राकृत भाषा के 23 ग्रंथों से मिलती है। वचनामृत के संपादन में उनका योगदान मुख्य रहा है। संस्कृत साहित्य में (1) ब्रह्मसूत्र भाष्य, (2) श्रीमद् भागवत दशम स्कंध की टीका (3) निर्णय पंचक और (4) 'सत्संगिजीवन माहात्म्य' आदि मुख्य हैं।

प्राकृत में गुजराती और हिन्दी भाषा में दूहे, चोपाई, धोल, प्रभाती,

गोड़ी, गरबी, सामेरी आदि अनेक राग-ढाल में रचे हुए उनके पदों में महाराज की मूर्ति का वर्णन, सर्वदेशीय उपदेश और संत के लक्षण तथा संतमहिमा आदि का वर्णन भी शास्त्रानुसार तथा मौलिकता के साथ मिलता है !

स्त्रियों के लिए भी उन्हों ने रुक्मिणीविवाह, सतीगीता, आदि ग्रंथ तथा लग्न के गीत और होरी के पद आदि की रचना की हैं। गुजराती में रचित ग्रंथों में 'उद्धवगीता' और 'मुकुंदबावनी' अत्यधिक प्रसिद्ध है।

उनके भक्तहृदय से प्रवाहित प्रत्येक रचना भक्ति से भरपूर है।

कीर्तन प्रसादी

पद-1

संत जन सोई सदा मोहे भावे। ॰टेक
देह इन्द्रिय अरु मन आदिक के, संग में नहीं लपटावे। संत॰ 1
काम क्रोध अरु लोभ मोह वश, होय न मन ललचावे;
मेरो ही ध्यान रटन मुख मेरो, सो तजी अन्य न जावे। संत॰ 2
क्षर अक्षर अरु अक्षर पर की, सब ही समज उर लावे;
सब गुन पूरन परम विवेकी, गुण को मान न आवे। संत॰ 3
पिंड ब्रह्मांड से पर निज आत्मा, जानी के मम गुन गावे;
मुक्तानन्द कहत यूं मोहन, सोई जन संत कहावे। संत॰ 4

पद-2

नारद, अैसे संत सदा मोहे प्यारा। ॰टेक
जड चैतनकुं जानी जथारथ, रहत जगत से न्यारा। नारद॰ 1
ज्ञान वैराग्य अरु भक्ति के भाजन, जानत सार असारा;
ब्रह्मभुवन लगी काल चवीना, मानत जूठ पसारा। नारद॰ 2
मेरे वचन अचल उर राखत, मम गुन मगन उदारा;
सब पर मोय जानी उर धारत, मम पद प्रेम अपारा। नारद॰ 3
मम गुण श्रवण मनन उर मेरो, मम जस करत उचारा;
मुक्तानन्द कहत यूं मोहन, तेहि उर वास हमारा। नारद॰ 4

पद-3

नारद, मेरे संत से अधिक न कोई। °टेक
मम उर संत अरु मैं संतन उर, वास करूँ स्थिर होई। नारद° 1
कमला मेरो करत उपासन, मान चपलता धोई;
यद्यपि वास दियो मैं उर पर, संतन सम नहीं सोई। नारद° 2
भूको भार हरूँ संतन हित, करूँ छाया कर दोई;
जो मेरे संतकुं रति एक दुऐ, तेही जड़ डारुं मैं खोई। नारद° 3
जिन नरतन धरी संत न सेव्या, तिन निज जननी बिगोई;
मुक्तानन्द कहत यूं मोहन, प्रिय मोय जन निर्मोइ। नारद° 4

पद-4

नारद, ऐसे साचे संत की रीति। °टेक
जेही सुनी साधु परत पिछानत, जिनको मम पद प्रीति। नारद° 1
खट विकार जित अनघ आनंदी, मेरे वचन में वासा;
ब्रह्मादिक क्षर जानी जगत की, छोड़त सब विध आसा। नारद° 2
अक्षर पद जानत अविनाशी, तेही मध्य मुक्त अपारा;
पंच विषय त्यागी सब समरथ, करत काल का चारा। नारद° 3
क्षर अक्षर पर मोकुं जानत, सब अक्षर को स्वामी;
अपनो रूप शुद्ध ब्रह्म मानत, मेरो ही जन निष्कामी। नारद° 4

• • •

वैराग्यमूर्ति
सद्‌गुरु निष्कुलानंद स्वामी

'आप यहाँ क्यों आए? लोज नहीं गए?'

'स्वामी, आप यहाँ विराजमान हैं, और आपको छोड़कर हम अन्यत्र कहाँ भटकते फिरेंगे ?'

'लेकिन हमारी आज्ञा थी, कि सब लोजपुर जाएँ, और वर्णीराज के दर्शन से लाभान्वित हो !'

'स्वामी, क्या वर्णीराज इतने प्रतापी हैं ? क्या वे योगी हैं ? कि आप इतना आग्रह करके सबको लोज जाने की सूचना देते रहते हैं? आप कृपा करके मुझे बताईए कि क्या वर्णीराज सुखानन्दजी, रघुनाथदास, स्वामी रामदासजी या मुक्तानन्द स्वामी आदि के समान है ?'

'नहीं नहीं, भक्तराज !' रामानन्द स्वामी बोल उठे, 'वे तो सब से महान है !'

'तो क्या वे आप सरिखे समर्थ है ?' लालजी सुतार ने आगे पूछा।

स्वामी ने स्पष्ट कहा, 'वे तो हम से भी समर्थ है, प्रतापी है !' और स्वामी भावप्रवाह में बहते हुए वर्णीराज की अपरंपार महिमा का गान करने लगे। और लालजी सुतार को पुनः लोज जाने की तथा वर्णीराज के दर्शन करने की आज्ञा दी।

लालजी भक्त लोज पहुँचे तब तक उनके मन में संशय भरे पड़े थे, किन्तु वर्णीराज नीलकंठ के दर्शन करते ही मन शांत हो गया। प्रेमार्द्रभाव से वे वर्णी को मिले। उनको कृतकृत्यता की अनुभूति हुई। वर्णीराज ने भी मानो पूर्वजन्म से अपना कुछ संबंध हो, उसी लहजे में आशीर्वाद दे दिया : 'आप शुकजी समान वैराग्यवान होंगे !'

इस लालजी भक्त का जन्म जामनगर (जिला गुजरात) में शेखपाट गाँव में सं 1822 (सन् 1766) की वसंतपंचमी के शुभ अवसर पर हुआ था। उनके पिताजी थे रामभाई और माँ का नाम था अमृतबाई। रामानन्द स्वामी के गुरु आत्मानन्द स्वामी के आशीर्वाद से ही इस मुक्तराज का जन्म हुआ था।

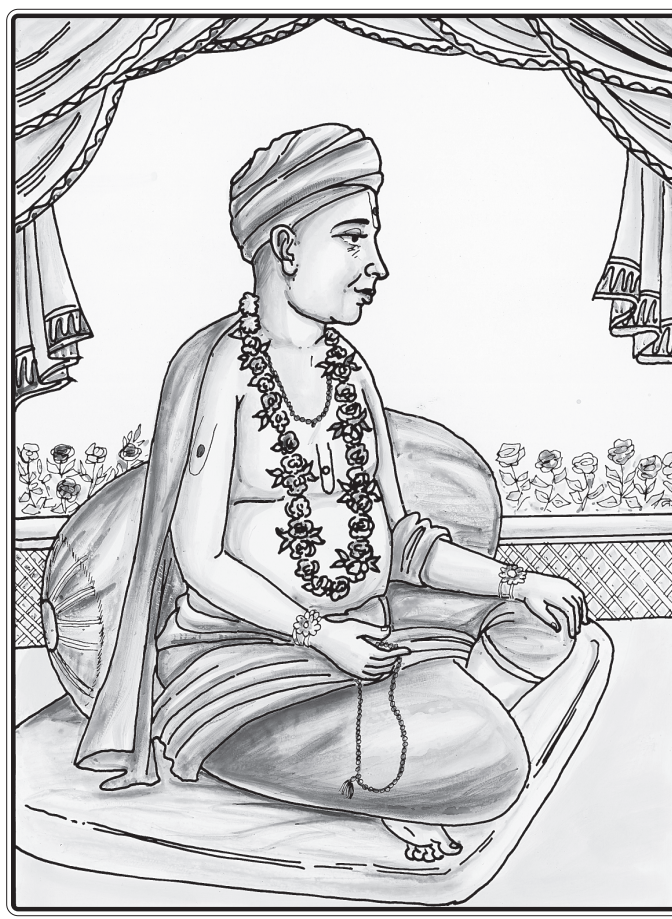

वैराग्यमूर्ति सद्. निष्कुलानन्द स्वामी

शिशु अवस्था से ही लालजी भक्त में उत्तम भक्त होने के चिह्न दिखाई देते थे। परमात्मा के कार्यविस्तार के लिए ही जिनका जन्म होता है, ऐसे महापुरुष जीवन के आरंभकाल से ही अलग प्रकार के होते हैं। किन्तु प्रारब्धवशात्, उन्हें भी कभी माया के बंधन में फँसना पड़ता है।

लालजी सुतार के साथ भी यही घटित हुआ। बचपन से ही उनके ब्याह लक्षणवती कन्या कंकुबाई से कर दिया गया। परिवार का धंधा भी सीखकर लालजी भक्त को संभालना पड़ा, सुतारी काम से कुछ फ़ुर्सत पाते ही वे भगवद्‌भक्ति और कथा-कीर्तन में लग जाते थे।

भगवद्‌कथा श्रवण और ज्ञानगोष्ठि की तो उनको ऐसी लगन थी, कि अपने गाँव से 14 मील की दूरी पर एक दूसरा गाँव था भादरा, उस गाँव तक जाते रास्ते पर ठीक सात मील पर एक शिवालय मौजूद था, वहाँ ज्ञानगोष्ठि के लिए लालजी भक्त प्रतिदिन रात के समय पैदल जाया करते थे ! क्योंकि भादरा से भी मूलजी भक्त उसी शिवालय पर प्रतिदिन रात के समय सात मील तक चलकर ज्ञानगोष्ठि करने के लिए आ जाते थे !

सारी रात दोनों भगवद् स्वरूप के महिमा की, संसार की नश्वरता की, पंचविषयों के खण्डन की बातें किया करते। प्रात:काल होते ही दोनों अपने अपने गाँव की ओर चल देते ! सालों तक निभाया गया यह रात्रिकथा का क्रम यही अभिप्रेत करता है, कि उन दोनों भक्तों की कथाश्रवण के लिए कितनी अनन्य आसक्ति थी !

इसी प्रदेश में स्वामी आत्मानन्दजी का अत्यधिक प्रभाव रहा था। किन्तु उनके देहावसान के बाद उनके शिष्य स्वामी रामानन्दजी का प्रभाव बढ़ने लगा। उनके सद्‌गुणों ने इन दोनों मुक्तों को आकृष्ट किए। दोनों ने स्वामी की शरणागति स्वीकार करते हुए वैष्णवी कंठी धारण की, और गुरुमंत्र भी ले लिया।

उसी दिन से लालजी भक्त को गुरु की ऐसी लगन लगी कि एक दिन उन्होंने गुरुचरण में प्रस्ताव रख दिया: 'स्वामी, मुझे आपकी शरण में ले लीजिए !'

स्वामी ने उनको धैर्य धारण करने को कहा, और बोले कि 'समय आने पर आपको बुला लेंगे !'

आखिर लोजपुर में उन्होंने वर्णीराज के दर्शन किए, और सभी संकल्प विराम हो गए। उनको लगा कि यही वह पुरुषोत्तम है, और मेरी खोज का अंतिम विराम हैं ! उनका मन अब वर्णीराज की दिव्य मूर्ति में रमने लगा।

अपने दोनों पुत्र माधवजी और कहानजी तथा पत्नी कंकुबा के साथ उनका परिवार पूर्णतः सुखी था, किन्तु दिन बीतते गए। रामानन्द स्वामी वर्णीराज नीलकंठ को भागवती दीक्षा देकर, तथा संप्रदाय की धर्मधुरा सौंपकर अक्षरनिवासी हो गए। वर्णीराज अब स्वामी सहजानन्दजी के नाम से गुजरात भर में अपनी दिव्य प्रतिभा का जादू फैला रहे थे। इस तरफ लालजी सुतार को भी कुछ चैन नहीं पड़ता था।

अचानक एक दिन सहजानन्दजी महाराज गाँव-गाँव विचरण करते हुए जामनगर जिले के भादरा गाँव में पधारे। ऊंड नदी में स्नानलीला की। दोनों किनारों पर पूर जोश में बहते पानी को देखकर श्रीहरि ने सहज संकल्प किया कि इस समय जलविहार के लिए एक छोटी सी नाव होती तो अच्छा होता। उन्होंने लालजी भक्त को उसी समय आदेश दिया कि 'एक नाव अभी-अभी बना दो ! या बाँस के टट्टर या लकड़े के पीपों से एक बेड़ा बना दो !'

लालजी भक्त को यह बात ही असंभव लगी। महाराज उनकी मनोदशा देखकर मुस्कुराने लगे, और बोले, 'नाव या बेड़ा न हो तो चलेगा, सिर्फ एक खद्दर की बड़ी चद्दर ला दो। '

लालजी भक्त तुरंत ले आए, मन में प्रश्न था कि महाराज इसका क्या उपयोग कर सकते हैं ? किन्तु सब के आश्चर्य के बीच श्रीहरि ने इस चद्दर को पानी में बिछा दी, लकड़े की नाव की ही भाँति वह तैरने लगी ! श्रीहरि स्वयं उस पर बैठ गए और अन्य भक्तों को भी बिठा दिए। सब इतने विस्मित थे कि कहीं सपना तो नहीं देख रहे हैं ! विस्मित दशा में ही सब महाराज के साथ जलविहार का लाभ ले रहे थे। थोड़ी ही देर में वे सामनेवाले किनारे पर पहुँच गए। ऐसा अलौकिक ऐश्वर्य देखकर लालजी भक्त तथा अन्य भक्तों को महाराज के स्वरूप में अधिक दृढ़ता से निश्चय हो गया।

संवत् 1860 में (सन् 1804) जब श्रीहरि शेखपाट पधारे, तब वसंतपंचमी का उत्सव वहीं पर मनाया गया। लालजी भक्त के मनोरथ पूर्ण किए, फिर महाराज ने कच्छ-भुज की और जाने का संकल्प किया।

श्रीहरि ने लालजी भक्त से कहा, 'हमें कच्छ-भुज तक जाना है, किन्तु रेगिस्तान के प्रदेश में कोई आप सरिखे रास्ते के जानकार मिल सकते हैं ?'

लालजी भक्त ने सोच लिया, कि यह सेवा में ही क्यों न उठा लूँ ? मैं भी तो रेगिस्तान से गुजरते रास्ते से भली भाँति परिचित हूँ। वैसे भी महाराज ने मेरे सरिखे भक्त की सूचना की है, तो जरूर उसमें कोई मर्म होगा। तो मैं मेरे सिवा और दूसरे को ढूँढ़ने क्यों जाऊँगा ?

लालजी भक्त ने तुरंत ही हाथ जोड़कर प्रार्थना की, 'महाराज, मैं ही आपके साथ रास्ता बताने आऊँ तो कैसा रहेगा ?'

श्रीहरि ने कहा, 'तो तो बात ही कुछ और होगी ! हम अवश्य बहुत खुश होंगे !'

लालजी भक्त ने तुरन्त ही तैयारियाँ आरंभ कर दी। उनको रेगिस्तान की सफर का पूरा अनुभव था। अतः कुछ भोजन का प्रबंध किया, और पानी भी साथ रखने की व्यवस्था की। थोड़े से पैसे चोरों के भय के कारण अपने जूते में छिपा लिए।

महाराज और लालजी सुतार कच्छ के रेगिस्तान की घरती पर भुज के लिए चल दिए। मार्ग में ही एक भूखा भिक्षुक मिल गया। लालजी सुतार को तो उन्हें कुछ देने का मन नहीं हुआ, लेकिन महाराज ने अपने साथ जो कुछ लिया था, सब भोजन उनको दिला दिया ! ऐसे ही एक प्यासा आदमी मिला, उनको पानी भी पिला दिया। अब रह गए पैसे ! आगे चलकर चोरों ने दोनों को घेर लिया, पूरी तलाश के बावजूद चोरों को लालजी भक्त के पास कुछ नहीं मिला, तो हताश होकर जाने लगे। महाराज ने उनको समीप बुलाकर कहा, 'तुम अपनी विद्या में निपुण हो या नहीं? देखिए, इनकी जुतियों में! इसने धन वहीं छिपा रखा है !'

चोर भी ऐसी अद्‌भुत बात सुनते और ऐसे अद्‌भुत व्यक्तित्व को देखत। विस्मित रह गए और पैसे लेकर अपनी राह पकड़ ली। अब लालजी भक्त की चिन्ता इतनी बढ़ गई, दिल जोरों से धड़कने लगा, महाराज को अब क्या भोजन दूँगा ? प्यास बुझाने के लिए तो अब कोई उपाय ही नहीं बचा है !

किन्तु महाराज मन ही मन मुस्कुरा रहे थे, क्योंकि अब अपने भक्त के सभी आधार तोड़ दिये थे, और मात्र भगवान के आधार पर ही रहना सिखा दिया था।

विकट रणप्रदेश की धधकती गर्मी में प्यास के मारे लालजी भक्त का गला सूख रहा था। महाराज ने देखा, और अचानक एक जगह बताकर कहा, 'यहाँ देखो, पानी की घारा चलती है ! पानी के लिए हाथ से ही एक गड्ढ़ा कर लो। पानी मिल जाएगा !'

लालजी ने पूरे विश्वास से सूखी घरती पर हाथ मारा, और चंद क्षणों में छोटी सी घार बह निकली ! लालजी ने कपड़े से छानकर श्रीहरि को भी पानी पिलाया, स्वयं भी पिया, इस रण में इतना मीठा जल कैसे हो सकता है ? लालजी ने सोचा और पुनः वही पानी चखने ले लिए वापस लौटे। चाख लिया तो खयाल आया कि पानी अत्यंत खारा था ! हाँ, केवल उन्हींके लिए श्रीहरि ने इस ऐश्वर्य के दर्शन कराये। आगे दो दैवी पुरुष मिले, जो उनको प्रणाम करके आगे बढ़ गए।

छोटी सी बस्ती दिखाई दी, श्रीहरि एक तालाब के तट पर विश्राम के लिए बैठ गए। लालजी भक्त ने देखा कि श्रीहरि के चरणारविंदों में बहुत से काँटे लग गए थे। वे सो गए, तब लालजी भक्त ने काँटे निकाल लिए। किन्तु उनको श्रीहरि के चरणों में १६ दिव्य चिह्नों का दर्शन हो गया, तो उनका मन आनन्द विभोर बन गया !

लालजी भक्त के लिए आज इतनी दिव्य लीलाएँ घटी थीं, कि वे पूछे बिना न रहे, कि 'महाराज, मार्ग में हमें मिले थे, वे भिक्षुक आदि कौन थे ?' तब श्रीहरि ने बताया कि, 'हमें प्रथम जो संतपुरुष मिले थे वे रामानन्द स्वामी थे। इसके बाद जो दो दैवी पुरुष मिले वे दो देवता थे। '

अब श्रीहरि के चरणों से काँटे निकल गए थे। आगे चलकर वे और लालजी सुतार आधोई गाँव की रहावन पर आ पहुँचे। यहाँ आते ही श्रीहरि ने कहा, 'मुझे जोरों से भूख लगी हैं, आप कहीं से भी भोजन का प्रबंध करें। '

लालजी भक्त अब थोड़े रुककर बोले कि 'अपने पास जो भोजन था वह आपने दूसरों को दिलवा दिया, पैसे भी चोरों को दिलवा दिए, अब मेरे

पास कुछ नहीं है, मैं अब क्या लाऊँ ?'

तब उन्होंने कहा, 'यहाँ लोहाना ज्ञाति के एक भक्त हैं, उनके घर से भिक्षा माँगकर ले आईए।' लालजी भक्त ने कहा, 'अरे महाराज ! इस गाँव में मैं कैसे माँगने जा सकता हूँ ? यहाँ तो मेरा ससुराल है, और यहाँ तो मुझे पूरा गाँव पहचानता है। यहाँ में भिक्षा कैसे मांगूँ ?'

तब श्रीहरि ने मर्म में कहा, 'यदि आपको यहाँ कोई पहचाने ही नहीं, ऐसे बना दें, तो ?' 'तो तो बहुत अच्छा। ' लालजी ने कहा, परंतु उनके मन में हुआ कि अब महाराज न जाने क्या करेंगे ?'

हमने हमारे मन में कभी सोचा भी न हो ऐसा साम कराएँ उनको ही भगवान कहते है। आज तो लालजी भक्त की मुमुक्षुता की परीक्षा ही करनी चाही थी। महाराज ने वहीं उनके दाढ़ी मूँछ और चोटी काटकर, उनके पुराने कपड़े उतारकर उनको कौपीन और अलफी घारण करने की आज्ञा दी। सिर पर संन्यासियों सी टोपी पहनाई, और उनकी पूरी सकल बदल दी। अब तो नाम भी बदलना पड़ेगा, ऐसा सोचकर महाराज ने उनको उसी समय त्यागी की दीक्षा देकर उनका नाम रखा 'निष्कुलानन्द !' और कहा, 'आप आपके कुल का त्याग करके निष्कुल हुए हैं, अत: आज से आप 'निष्कुलानन्द' बने !' लालजी सुतार की अब भी एक परीक्षा बाक़ी रह गई थी, अत: श्रीहरि ने उनको अपनी ही ससुराल में भिक्षा माँगने के लिए भेज दिए।

लेकिन यह तो सहजानन्दी सिंह थे। मनोबल दृढ़ करते हुए वे अपनी ससुराल के प्रांगण में जाकर खड़े रह गए और आह्लेक का उच्च स्वर से उद्‌धोष किया: 'नारायण हरे, सच्चिदानन्द प्रभो !' परिचित स्वर सुनते ही घर में चहल पहल मच गई। लालजी की पत्नी कुंकुबा ने देखा तो उनके होश हवास उड़ गए। एक शब्द भी उनके मुँह से नहीं निकल सका, स्तब्धता ऐसी बनी रही कि होश गँवाना ही बाकी था। उन्होंने अपनी माँ को जैसे तैसे बात बताई, तब उनकी माँ ने कहा, 'बेटी, तू अपने दोनों बच्चों को उनके सामने ले जा दोनों को देखते ही उनका मन पीधल जाएगा। और उनके वैराग्य का रंग ऊतर जाएगा। ' परंतु माँ को क्या मालूम कि यह वैराग्य कोई सामान्य स्तर का नहीं था। अपने दोनों पुत्रों को देखकर और पत्नी का भाव परख कर निष्कुलानन्दजी इतना ही बोले, 'इस प्रकार अब

मुझे आपकी माया आसक्त नहीं कर सकती ! अग्नि को कभी दीमक नहीं लगती, इस प्रकार मुझे भी आपकी माया नहीं लग सकती। मैं तो महाराज के साथ यहाँ आया हूँ। और यदि आपको अपना कल्याण करना हो तो उनके लिए भिक्षा में जो कुछ भोजन हाज़िर हो वह देकर सेवा का यह मौका उठा लीजिए। '

अपने पति के अनासक्तभाव को पत्नी ने ठीक तरह से समझा। वह एक शब्द भी नहीं बोल सकीं, और घर में जाकर बाजरे की ताजी रोटियाँ घी डालकर बना दी, साथ में अचार भी रखा। झोली में सब अर्पण किया। भिक्षा लेकर निष्कुलानन्दजी श्रीहरि के पास आए। उन्होंने प्रसन्न होकर भोजन किया। और पूरी घटना की जानकारी पाकर श्रीहरि ने स्वामी की उत्कट वैराग्यभावना से बहुत प्रसन्नता व्यक्त की। परिवारजन निष्कुलानन्दजी को समझाने आ गए। किन्तु अब उनको अपने पूर्व जन्मों की स्मृति हो चुकी थी। उन्होंने अपने पूर्वजन्म की बात बताते हुए आत्मनिष्ठा की अलमस्ताई से कहा, 'मैं हूँ आदि अनादि आ तो सर्वे उपाधि। ' उनकी ऐसी दृढ़ता के आगे उनके परिवारजनों का कुछ बस नहीं चला। वे वहाँ से घर लौट गए।

श्रीहरि ने वहीं पर उनको 'यमदंड' नामक ग्रंथ की रचना करने का आदेश दिया।

तब उन्होंने कहा, 'महाराज, मुझे काव्यरचना का कोई अनुभव नहीं है, मैं क्या लिखूँगा। ' महाराज ने उनको यमलोक की यातना का साक्षात् दर्शन करवाया। तब उन्होंने ग्रंथ रचना का प्रारंभ किया।

फिर श्रीहरि अकेले कच्छ में भ्रमण करने के लिए निकल गए। विचरण के बाद दोनों वापस गढ़पुर पधारें। यहाँ मुक्तानन्द स्वामी के समागम से उनको श्रीहरि के प्रति अत्यधिक प्रीति बढ़ती गई।

एकबार श्रीहरि ने उनको समाधि में दिव्य दर्शन कराये, तब इस स्वरूप दर्शन का उन्होंने सुन्दर पद बनाया : 'सहजानंद हरि, प्रकट थया सहजानन्द हरि। !'

कुछ समय बीतने पर अपने परिवार की ओर से उनको फिर से उपाधि प्रारंभ हुई। जब घर से उनके दोनों पुत्र उनको संसार मे लौटाने के लिए समझाने आए तो स्वामी निष्कुलानन्दजी ने अपने बड़े पुत्र को ऐसी

तीव्र वैराग्य की महिमा कही कि उनको भी वैराग्य का रंग चढ़ा दिया। पूर्व के संस्कार से उनके हृदय में चोट लगी और उन्होंने भी प्रकट भगवान को प्रसन्न करने हेतु दीक्षा ले ली। गोपालानन्द स्वामी ने का नाम 'गोविंदानन्द' रखा। फिर उनको महाराज के पास ले गए और महाराज को उनकी पहचान करवाई। तब महाराज बोले, 'सिंह के तो सिंह ही होते हैं। '

नैष्ठिक ब्रह्मचारी ऐसे ये गोविंदानन्द स्वामी भी अपने पिता के समान खूब समर्थ संत बने।

एकबार श्रीहरि ने निष्कुलानन्द स्वामी को स्त्रियों की सभा में बातें करने का आदेश दिया। लेकिन श्रीहरि की आज्ञा थी कि संतों को अष्टप्रकार से स्त्री और घन का त्याग रखना। अतः वे श्रीहरि की आज्ञा होते हुए भी स्त्रियों की सभा में उपदेश देने नहीं गए।

श्रीहरि ने उनसे पूछा, 'आप बहेनों की सभा में क्यों नहीं गए ?'

स्वामी नम्रता से बोले, 'यदि मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं करूँगा, तो आप मुझे विमुख करेंगे, तो मैं विमुख हो कर भी स्त्रियों की सभा में उपदेश नहीं करूँगा। मुझे त्यागी के नियमों से भ्रष्ट नहीं होना है।

स्वामी की ऐसी दृढ़ता देखकर श्रीहरि खूब प्रसन्न हुए। क्योंकि ऐसे ब्रह्मचर्यनिष्ठ संत ही अपना और समाज का उद्धार कर सकते हैं।

उनके उत्कट वैराग्य की एक अन्य घटना भी है। एकबार गोपालानंद स्वामी के साथ निष्कुलानंद स्वामी बड़ौदा पधारें। बड़े शहरों में पंचविषयों का संबंध अधिक होने से वे कभी शहरों में जाना पसंद ही नहीं करते थे। बड़ौदा में गोपालानन्द स्वामी ने दूधपाक की रसोई करवाई। निष्कुलानन्द स्वामी रसोई घर मैं पहुँचे और देखा तो दूध के वर्तन भरे हुए पड़े थे। इसे देखकर वे तो अपने समान इकठ्ठा करके धोलेरा वापस लौटने की तैयारी करने लगे।

जब गोपालानन्द स्वामी को पता चला कि निष्कुलानन्दजी तो वापस चलते हैं, तो वे दौड़ते हुए आए और स्वामी को उन्होंने पूछा कि यह सब क्या है ? और आप क्यों जाने की तैयारी में लगे हुए हैं ? निष्कुलानन्द स्वामी ने बताया कि 'जहाँ दूध आदि की इतनी भरमार हो, वहाँ त्यागी कैसे रह सकते ?'

तब गोपालानन्द स्वामी ने उनकी त्याग की रुचि देखकर दूध के सभी बर्तन नाली में लुढ़का दिए। और सादी रसोई करवाने का ही यकीन दिलवाया, तब वे शहर में रुकने के लिए तैयार हुए।

एकबार कारियाणी में कुएँ के पास स्वामी पानी का एक छोटा सा कुंड बना रहे थे। श्रीहरि भी वहीं बिराजमान थे। संवत् 1877 (सन् 1829) का आश्विन महीना था। गोपालानन्द स्वामी गाँवो में विचरण करके महाराज के दर्शन के लिए कारियाणी आए। उनको देखकर श्रीहरि बहुत खुश हुए। फिर महाराज गोपालानन्द स्वामी का हाथ पकड़कर 'अक्षर ओरडी' में पधारे। तब निष्कुलानन्द स्वामी के मन में हुआ कि श्रीहरि गोपालानन्द स्वामी के साथ कुछ महत्त्वपूर्ण विमर्श करना चाहते हैं। अत: उन्होंने भी दोनों का अनुसरण किया, किन्तु श्रीहरि ने उनको कुंड निर्माण के काम के लिए ही वापस भेज दिया। जब श्रीहरि ने अक्षरओरडी के द्वार बंद कर दिए, तब निष्कुलानन्द स्वामी द्वार की दरार से श्रीहरि की बातें सुनने लगे। यद्यपि यह अविनय था, किन्तु श्रीहरि का हृद्गत अभिप्राय जानने के लिए इसके सिवा क्या चारा हो सकता है ? निष्कुलानन्द स्वामी ने यही सोचकर साहस किया था। श्रीहरि अपने पृथ्वी पर प्रकट होने के छ: उद्देश्यों की तथा अवतार-अवतारी के स्वरूप निरूपण की गहन बातें गोपालानन्द स्वामी से कहने लगे थे।

निष्कुलानन्द स्वामी ऐसी बातें सुनने में तल्लीन हो गए। रामानन्द स्वामी ने बताई हुई श्रीहरि की यथार्थ महिमा की सभी बातें उनके स्मरण में उभर उठी। सर्वोपरि उपासना का सिद्धांत उनके अंत:करण में अत्यधिक दृढ़ हुआ। इस बात के आधार पर उन्होंने श्रीहरि के सर्व अवतारि स्वरूप एवं सर्वोपरि महिमा का निरूपण करते हुए 'पुरुषोत्तम प्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना की।

एकबार श्रीहरि ने सभा में बताया कि 'गढ़डा मंदिर के महंत पद पर निष्कुलानंद स्वामी को नियुक्त करना है। '

यह बात सुनते ही स्वामी उलझन में पड़ गए। और वे रात ही रात गढ़डा से दूर गढ़ाळी गाँव में चले गए। उनके मन में यही भाव था, यदि मैं यहाँ रहूँगा तो श्रीहरि मुझे महंत बनाये बिना नहीं रहेंगे, और ऐसा अधिकार

साधक के लिए बोजरूप है! किन्तु श्रीहरि ने उनका पता लगाकर उनको गढ़ाळी से पुनः गढ़डा बुला लिए। श्रीहरि ने उनको चले जाने का कारण पूछा, तब उन्होंने बताया कि 'महाराज, आप ही सोचिए कि एक पाव भर के चूहे पर सवा मन की लोहे की पाट पड़े तो फिर चूहा का क्या होगा ? वह तो चूर-चूर हो जाएगा। इस प्रकार इतना बड़ा व्यवहार मेरे जैसे सामान्य के सिर पर रखने से मेरा तो ठिकाना ही नहीं रहेगा। ' जब श्रीहरि ने उनको महंत नहीं बनाने ढ़ाढस बंधाया तब स्वामी शांति से गढ़पुर रहने पर तैयार हुए ! ऐसी थी उनकी उत्कट वैराग्यवृत्ति। आखिर, स्वामी ने धोलेरा गाँव के मंदिर में अपना निवास पसंद किया। क्योंकि समुद्रतट पर आया हुआ यह एक छोटा सा गाँव, जो सूखा प्रदेश होने के कारण वहाँ बस्ती भी बहुत कम थी। जहाँ कोई विशिष्ट पदार्थों का योग ही नहीं होता था। और इस मंदिर के महंत अद्‌भुतानंद स्वामी भी निष्कुलानन्द स्वामी जैसी वैराग्य की रुचि रखनेवाले ही थे। दोनों संतों को वैसे भी परस्पर अच्छी बनती थी।

साधुता की सौरभ के साथ-साथ स्वामी की विशिष्टता यह भी थी कि वे कला-कौशल्य और साहित्य में भी अत्यंत निपुण थे। वे एक अच्छे शिल्पी थे। धोलेरा मंदिर के ठाकुरजी के मुख्यद्वार, घुम्मट तथा कमान आदि आज भी स्वामी की प्रवीणता की गवाही देते हुए दर्शन दे रहे हैं। गढ़डा में 'अक्षरकुटिर' का काम भी उनके द्वारा ही हुआ था। उनका एक चिरस्मरणीय सर्जन है वरताल में फूलदोल के उत्सव पर बनाया हुआ नकाशीकाम से भरपूर बारह द्वार का हिंडोला। जिसमें विराजित होकर महाराज ने भिन्न भिन्न बारह स्वरूप धारण करके सबको अलौकिक दर्शन दिए थे। स्वामी के लिए धोलेरा का पानी पथ्य नहीं था। अतः उनके शरीर पर गर्मी से फोड़े भी निकल आते थे। हालाँकि वे खान-पान में खूब संयमी थे, फिर भी नादुरस्ती उनके शरीर को घिरे रहती। बाजरे का सोगरा और छाछ ही उनका रोज का भोजन था। किन्तु गर्मी से उठे फोड़े का दर्द कम नहीं होता था। ऐसी भयानक पीड़ा देखकर मंदिर के सभी संत-हरिभक्त धुन करके महाराज को प्रार्थना करने लगे कि स्वामी का दर्द मिटा दे ! निष्कुलानन्द स्वामी को जब प्रार्थना के हेतु का पता चला तो बहुत दुःखी हुए और सबको बुलाकर कहा, 'देखिए, मेरे प्रारब्ध में लिखा हुआ दुःख तो मुझे इसी जन्म में भोगना ही

पड़ेगा। और मेरा दु:ख आप में से कोई धारण नहीं कर सकेंगे। तो देह के दु:ख मिटाने के हेतु श्रीहरि को प्रार्थना क्या करनी ? अत: यदि आप मेरा भला चाहते हो तो ऐसी प्रार्थना बंद करें। महाराज की इच्छा से जो कुछ होना है, होने दीजिए इसी में मेरा भला है। ' स्वामी की ऐसी आत्मनिष्ठा और भक्तिनिष्ठा से सब गद्‌गदित होकर प्रार्थना करने लगने कि ऐसी ही आत्मनिष्ठा हमारे जीवन में भी आत्मसात् हो !

संवत् 1904 में (सन् 1848) 82 वर्ष की उम्र में धोलेरा मंदिर में ही स्वामी ने शरीरत्याग किया और अक्षरधाम में श्रीहरि की सेवा में विराजमान हो गए।

निष्कुलानन्द स्वामी बड़ी उम्र में त्यागी हुए थे, उन्होंने संस्कृत का अभ्यास नहीं किया था, परंतु प्राकृत भाषा के वे महाज्ञानी थे। शास्त्रों के अभ्यास एवं अनुभव से उन्होंने गुर्जरभाषा में सत्संग को अमूल्य साहित्य की भेंट दी। श्रीहरि की कृपा का अभिषेक उनकी काव्यधारा पर हर हमेश होता रहा। उन्होंने जीवन के अंतिम समय तक साहित्य सर्जन की धारा प्रवाहित रखी थी। उनके साहित्य में समाज में प्रचलित दृष्टांतों का उपयोग अधिकतर हुआ है। इसके साथ अर्थसभर पदलालित्य तथा त्याग-वैराग्य, भक्ति, महिमा, नियम और विविध उपदेश संबंधी उनके ग्रंथ और काव्य संप्रदाय के साहित्य में गौरवप्रद स्थान भोग रहे है। महाराज की उपस्थिति में रचा हुआ महाराज के लीलाचरित्र का ग्रंथ 'भक्तचिंतामणि' आज भी घर घर में गुंजता रहा है।

उन्होंने छोटे-मोटे तेईस ग्रंथों की रचना की हैं। जिनमें मुख्य ग्रंथों के नाम इस प्रकार है: (1) भक्तचिंतामणि (2) यमदंड (3) सारसिद्धि (4) वचनविधि (5) हरिबलगीता (6) धीरजाख्यान (7) स्नेहगीता (8) पुरुषोत्तम प्रकाश (9) भक्तिनिधि (10) चोसठ पदी आदि।

स्वामी का पूरा पद्यसाहित्य सरल गुजराती भाषा में हैं, जिस में शास्त्रों के सुंदर दृष्टांत कथन प्रत्येक विषय को उचित न्याय और काव्यकला का पदविन्यास आज भी हमें विस्मित करता है। खास करके उनकी पदरचना में भगवान के धारक परम एकांतिक गुणातीत संत के लक्षण एवं महिमा अच्छी तरह बताये है। श्रीजी के हृद्‌गत अभिप्राय को जाननेवाले और गुणातीतानंद

स्वामी के परम सखा इस संतवर्य निष्कुलानन्द स्वामी ने संत-असंत की शास्त्रोंक्त समझ (खास करके 'चोसठ पदी' में) और संत द्वारा कल्याण की बात सत्संग समाज को समझाई है। इसके अलावा उनके द्वारा रचे गए कीर्तनों के संग्रह ने भी गुजराती साहित्य में अमर स्थान प्राप्त कर रखा है।

कीर्तन प्रसादी

पद-1

क्यूं रीझेगा राम बंदे क्यूं रीझेगा राम। । ॰टेक

ऐसा प्यार (तेरा) नहि प्रभु से, जैसे प्यारे दाम,
देख विचारी दिलमांही तूं, राम प्यारा के वाम। । 1

ऐसी यारी नहीं साहेब की, जैसी नारी सुत धाम,
हेला मात्र हरि कुं संभारत, तन धन आठुं जाम। । 2

निशदिन ध्यान धरे दुनिया को, घडी न रटे घनश्याम,
हृदये जगत, भगत मन मानत, कैसे सुधरे काम। । 3

चलना खोटा (और) मान ले मोटा, धरे ज्ञानी का नाम,
निष्कुलानन्द कहे ठग तेरा, नहीं ठिकाना ठाम। । 4

पद-2

मैं हूँ आदि अनादि, आ तो सर्वे उपाधि;
सद्‌गुरु मिलिया अनादि, मिट गई सर्वे उपाधि। टेक॰

कहां कष्ट ने कहां कुहाडा, कहां है घडननहारा;
जब ते मोहे सद्‌गुरु मिलिया, मिट गया सर्वे चारा। । मैं हूँ॰ 1

कौन कुल ने कौन कुटुंबी, कौन मात ने तात;
कौन भाई ने कौन भगिनी, ब्रह्म हमारी जात। मैं हूँ॰ 2

नहीं रह्या मैं नहीं गया मैं, नहीं सुघर्या नहीं बिगड़ा;
हमे हमारा कुल संभार्या, मत करना कोउ झगड़ा। मैं हूँ॰ 3

पानी में से पुरुष बनाया, मळमूत्र की क्यारी;
मिल्या राम ने सर्यां काम, अब ना रही कोउ से यारी। मैं हूँ॰ 4

आगे तपसी तपसा करता, रही गई किंचित कामा;
ते कारण आ नरतन धरियो, सो जानत है रामा। मैं हूँ॰ 5
जे कारन आ नरतन धरियो, ते सरियुं छे काम;
निष्कुलानन्द कहे प्रकट मळ्या मोहे, टळ्युं नाम ने ठाम। मैं हूँ॰ 6

पद-3

धन्य धन्य ऐ संत सुजाणने;
जेनुं ऊलटी पलट्युं आप। । संत ते स्वयं हरि॰ 1
आप टळी मळ्या भगवानमां, जेना आपमां हरिनो व्याप। संत॰ 2
जेना शीशमां शीश छे श्यामनुं, जेना नेणमां नाथनां नेण। । संत॰ 3
जेना मुखमां मुख महाराजनुं, जेना वेणमां वा'लानां वेण। । संत॰ 4
जेना कानमां कान छे कृष्णना, जेना नाकमां नासिका नाथ। । संत॰ 5
जेनी जीभमां जीभा जीवननी, जेना हाथमां हरिना हाथ। । संत॰ 6
जेना हृदयमां हृदय हरि तणुं, जेना पावमां प्रभुना पाव। । संत॰ 7
जेम हीरो हीरा वडे वेंघीऐ, तेम थयो ते सहज समाव। । संत॰ 8
एम संतमां रह्या छे श्रीहरि, माटे संत छे सुखनुं धाम। । संत॰ 9
धर्म भक्ति वैराग्य ने ज्ञान जे, तेने रहेवानुं संत छे ठाम। । संत॰ 10
एवा संत शिरोमणि क्यां मळे, जेणे देहबुद्धि करी दूर। । संत॰ 11
कहे निष्कुलानन्द एने संगे, ऊगे अंतरे आनंद सूर। । संत॰ 12

• • •

आदि आचार्य
श्री रघुवीरजी महाराज

रघुवीरजी महाराज श्रीहरि के छोटेभाई इच्छारामजी पाण्डे के चौथे पुत्र थे। संपूर्ण साधुगुण संपन्न एवं नम्रमूर्ति आचार्येन्द्र रघुवीरजी महाराज का जन्म संवत् 1868 (सन् 1812) फाल्गुन कृष्णा चतुर्थी के दिन उत्तर प्रदेश के आमलीया गाँव में हुआ था। बचपन से ही सात्विकता उनके व्यक्तित्व का भूषण रही।

उनमें दैवी गुणों का अधिक विकास छोटी वय में भी दृष्टिगत होता था। सादगीपूर्ण जीवन में ही उनकी रुचि थी। अपनी पूजा सामग्री में भी अभूल्य चीजवस्तुओं की जगह अंतर के भाव को ही उन्होंने अधिक महत्त्व दिया था। अंत्यत गद्‌गदभाव से जब पूजा करते तो दर्शनार्थी को भी शांति की अनुभूति होती। प्रत्येक धर्मकार्य में वे हमेशा सद्‌गुरु गोपालानन्द स्वामी की राय लेते रहते थे। और स्वामी के अक्षरवास के बाद स्वामी की ही आज्ञा से अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी की आज्ञानुसार व्यवहारकार्य करते थे। मर्यादा पालन में उनकी दृढ़ता अनन्य थी ! तथा महाराज के प्रति उनका भक्तिभाव भी अनन्य था।

उनका हृदय सेवा भावना से छलकता रहता था। एक बार किसी एक संत का स्वास्थय ठीक नहीं था। करीब पांच दिन से उन्होंने भोजन में कुछ नहीं लिया था। कुछ स्वस्थता के बाद उन्होंने भोजन की इच्छा बताई और सेवक को भोजन लाने की आज्ञा दी। रात का समय था। भोजन की सामग्री का कोई प्रबंध नहीं हो सका। सेवक ने सोचा कि ये सामग्री इस समय एक ही जगह से मिल सकती है, आचार्य रघुवीरजी महाराज के घर से। उसने वहाँ जाकर संत की बीमारी की बात बताई, तो रघुवीरजी महाराज अत्यंत द्रवित हो गए और कहा, 'इस आधी रात के समय केवल आटा लेकर आप क्या करेंगे ? चलिए मेरे साथ।' उन्होंने स्वयं रसोई करने की तैयारियाँ कर दी। बीमार संत की अनुकूलता अनुसार रसोई तैयार हुई ! संत को भोजन कराया ! क्या आचार्यपद पर रहकर ऐसी नम्रता और ऐसा सौहार्द अन्य

आदि आचार्यवर्च श्री रघुवीरजी महाराज

किसी से संभव है ?

वरताल में रामनवमी के उत्सव पर अनेक संत-हरिभक्त पधारे थे। गढ़डा से आए हुए एक संत को पेट में ज़ोरों से दर्द होने लगा। आचार्यश्री को जब इस बात का पता चला, तब दो पार्षदों के साथ वे संत के आसन पर पधारे। संत को जहाँ दर्द होता था, वहाँ उन्होंने स्पर्श किया, तो तुरंत ही उनका दर्द गायब हो गया और शांति हो गई ! सब उनकी इस शक्ति से चकित रह गए ! श्रीहरि के प्रताप से उनका ऐसा भी प्रभाव दिखाई देता था।

इसी कारण बड़े बड़े सद्‌गुरु भी रघुवीरजी महाराज की महिमा समझते थे। एक प्रसंग पर गोपालानंद स्वामी तथा नित्यानंद स्वामी आदि रघुवीरजी महाराज के साथ सुरत पधारे। यहाँ पारसी भक्त अरदेशरजी बड़े समर्पित थे, किन्तु संतों की महिमा तो वे समझते, लेकिन महाराज श्री की उनके मन मैं कोई विशेष महिमा नहीं थी। संतों ने सोचा कि अरदेशरजी रघुवीरजी महाराज की महिमा जाने तो बहुत अच्छा।

एक दिन गोपालानन्द स्वामी ने अपने मंडल के संत केशवजीवनदास को समाधि में भेज दिया। अरदेशरजी ने नाड़ी टटोल कर देखी, किन्तु वह बंद थी ! तीन दिन केशवजीवनदासजी की समाधि लगी रही। तब अरदेशरजी ने स्वामी से कहा कि 'स्वामी, इनको अब जाग्रत कीजिए। ' स्वामी ने कहा, 'आप रघुवीरजी महाराज से कहो, वे उनको समाधि से जगायेंगे। '

रघुवीरजी महाराज सभा में पधारे तब अरदेशरजी ने उनसे प्रणाम करके विनती की, उन्होंने मात्र साधु का नाम पुकारा और तुरंत ही केशवजीवनदासजी जाग्रत हो गए और सभा में सबको बताने लगे कि समाधि में मैं अक्षरधाम में गया था। वहाँ से महाराज ने आप सबको 'जय स्वामिनारायण' कहा है। जब मैं वहाँ मूर्ति का सुख ले रहा था, कि रघुवीरजी महाराज ने मुझे जगा दिया। ' अरदेशरजी इस प्रसंग के बाद रघुवीरजी महाराज की महिमा समझने लगे !

ऐसे ऐश्वर्यसंपन्न होते हुए भी वे अत्यंत नम्र एवं क्षमाशील थे। ये उनके बड़े सद्‌गुण थे।

एक बार महेलाव गाँव में संत मंडल ने एक कीर्तन गाया:

मतपंथ ने माथे मेख, मारी लीधा जन छोडवी जो,
मुंड्या कंईक गुरु भेख, पाड्या महंत ने गोडवी जो।

(अर्थात् 'भगवान स्वामिनारायण के प्रकट होकर मतपंथों के सिर पर ऐसा धावा बुलाया कि पंथों के अनुयायीयों को उनके पाश से छुड़ा लिए! बड़े -बड़े महंतों, संन्यासियों को उन्होंने अपने त्यागी वृन्द में समाविष्ट कर लिए ऐसे वे बहुत बड़े सिद्ध हैं।')

मंदिर के निकट ही एक वैष्णव हवेली के गोसाँईजी इस पद को सुनते ही आगबबुले हो गए। संतों से उनकी ईर्ष्या पहले से ही थी, अत: वे हल्ला लेकर स्वामिनारायण मंदिर में आ गए।

युवा संत तो इधर-उधर बिखर गए। किन्तु एक वृद्ध साधु वहीं बैठे रहे थे, वैष्णवों ने उनको इतना पीटा की वृद्ध संत ने वहीं दम तोड़ दिया। वरताल में इस हादसे का समाचार मिला, तो नित्यानन्द स्वामी ने सौ बंदुकघारी पार्षदों को महेलाव भेजे और गोसांई को सबक सीखाने का आदेश दिया। परंतु रघुवीरजी महाराज ने सबको वापस लौटने का हुक्म दिया। और कहा, 'हमें उनसे वेर वसूल नहीं करना है। महाराज जो कुछ करेंगे अच्छा ही करेंगे। '

साधु की हत्या का समाचार सरकार तक पहुँचना स्वाभाविक था, सरकारश्री द्वारा गोसांई को भारी दंड चुकाने का हुक्म तैयार हो गया था। समग्र वैष्णव समाज ने एकत्र होकर रघुवीरजी महाराज के पास क्षमाप्रार्थना की, और गोसांई को छुड़ाने के लिए निवेदन प्रस्तुत किया। आचार्य महाराज ने विशाल दिल से उनके प्रस्ताव का स्वीकार कर लिया, और गोसांई को दण्ड से बचा लिया !

रघुवीरजी महाराज प्रकृति से ही नि:स्पृह थे। अपनी सारी संपत्ति का विनियोग सत्संग के विकास के लिए ही करना, उनका एक मात्र लक्ष्य था।

संवत् 1911 (सन् 1855) के हरिजंयती के उत्सव पर गुणातीतानंद स्वामी वरताल पघारे थे। आचार्य महाराज ने उनसे कहा, 'स्वामी, इस बार पधरावनी की भेंट अधिक आई है, अत: तो मेरा संकल्प है कि यहाँ 'सत्संगिजीवन' ग्रंथ की कथा बिठाऊँ और साढ़े चार मास तक संतों-हरिभक्तों के भोजन का खर्च मेरी ओर से दूँ। '

ऐसे उच्च भक्तिभाव से स्वामी बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'बहुत अच्छा, आपका तो यही धर्म है। आपके धन का सही उपयोग इसी प्रकार होना चाहिए। आपका धर्म है कि सत्संग की पुष्टि करना !'

जब कथापर्व का आयोजन हुआ, तब स्वामी पुनः वरताल पधारे। हरिभक्त अधिक संख्या में आनेवाले थे, और समस्या यह थी कि गोमती तालाब में पानी भी पर्याप्त नहीं था। रघुवीरजी महाराज ने स्वामी से निवेदन किया कि अब की बार आप ऐसा संकल्प करें कि मूसलाघार बारिश हो, और गोमती तालाब पानी से छलछला जाए। स्वामी ने ऐसा ही किया, और कथाप्रसंग निर्विघ्न होने के संकेत मिलने लगे।

इस प्रसंग पर प्रदेश प्रदेश से बड़े बड़े संत पधारे थे। मंगला आरती और श्रृंगार आरती के बीच कथा ऐसी अद्‌भुत होती थी कि पुरा माहौल बदल जाता था। सुबह की कथा के बाद रघुवीरजी महाराज की आज्ञा से स्वामी श्रीहरि के पुरुषोत्तमस्वरूप के महिमा की बातें तथा विषयखंडन का उपदेश देते रहते, तथा अक्षररूप होने की सैद्धांतिक बातें भी करते थे। सभी संत-हरिभक्त ब्रह्मानन्द में झूमने लगे। हाँ, कोई ऐसे भी थे, जिनको ये बातें कठिन लगीं, उन्होंने शुकमुनि स्वामी को उपदेश देने के लिए बिठा दिए ! लेकिन शुकानन्द स्वामी का स्वर मंद था, और उनकी बातों में शास्त्रलिखित तत्त्वज्ञान की गहन एवं सूक्ष्म बातें ही अधिक होती थी, भक्तों का कथा प्रसंग का मजा किरकिरा हो जाता था ! इसी कारण श्रीहरि ने रघुवीरजी को उसी रात स्वप्न में दर्शन देकर कहा, 'स्वामी को यहाँ वरताल में किस लिए रखें हैं ? उनसे बातें करवाना हो तो यहाँ रखिए, वरना उनको जूनागढ़ वापस लौट जाने दीजिए। '

रघुवीरजी महाराज को भूल समझ में आई। उन्होंने सभा में सबको कहा, 'यह कथा जितने दिन चलेगी, गुणातीतानन्द स्वामी ही बातें करेंगे। यदि किसीको ये बातें नापसंद हो, तो वे गाँवों में विचरण के लिए जा सकते हैं, यहाँ रहना हो, तो स्वामी की बातें ही सुननी होगी !' स्वामी ने भी सत्संग का खूब लाभ दिया और रघुवीरजी महाराज ने भी सबको अत्यधिक लाभ दिलवाया। कथा प्रसंग में एकबार उन्होंने स्वामी से प्रश्न पूछा कि 'अक्षर कौन है ?'

स्वामी ने तुरंत बताया कि 'जिनके स्वरूप में अधिक से अधिक लोग आकृष्ट होते हैं, जिनकी बातों से जीवों का अज्ञान दूर होता है और ब्रह्मभाव प्रकट होता है, तथा जिन के उपदेश से 'श्रीहरि सर्वोपरि भगवान है' ऐसा निश्चय होता है, उनको ही आप 'अक्षर' माने। '

रघुवीरजी यह मार्मिक बात समझकर बहुत प्रसन्न हुए। यहीं पर स्वामीश्री की प्रेरणा से उन्होंने श्रीजीमहाराज के लीलाचरित्र और सर्वोपरि महिमा का ग्रंथ रचने की ब्रह्मचारी अचिन्त्यानन्दजी से आज्ञा की थी। यह ग्रंथ 'हरिलीलाकल्पतरुः' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कुछ समय के बाद वे विधुर हुए। दूसरे विवाह करने के लिए उनको भारी आग्रह किया गया था, परंतु स्वामी की आज्ञा से उन्होंने अखंड ब्रह्मचर्य-पालन की प्रतिज्ञा ले ली। हाँ, जब तक वासना हृदय से न मिटे, तब तक संकल्प-विकल्प होते रहते हैं, और आत्ममंथन भी चलता रहता है। रघुवीरजी यही स्थिति का अनुभव कर रहे थे। एकबार विचरण में उन्होंने स्वामी को अपने सिगराम (बैलगाड़ी) में बिठाये, और स्वामी को प्रसाद के रूप में एक पेडा दिया। स्वामी उसे हाथ में लेकर बोले, 'पांच सौ परमहंस मेरा गला पकड़कर कह रहे है कि, 'मत खाना, मत खाना ! ज़हर है, ज़हर है !'

ऐसी अनासक्ति सभर वाणी सुनकर रघुवीरजी महाराज ने स्वामी से कहा, 'स्वामी, आप यदि सिद्ध होकर भी इस प्रकार अनासक्त रहते हैं, तो हमारी तो न जाने कैसी गति होगी ?!'

स्वामी उनके मर्म को समझे और कहा, 'आप भगवत्प्रसादजी महाराज को आपकी जिम्मेवारी सौंपकर, तीर्थवासी बनकर जूनागढ़ आईए। यदि मैं आपके देहभाव की सभी ग्रंथियाँ मिटा न दूँ, तो मेरा नाम गुणातीत नहीं। '

स्वामी के इस आदेश को शिरोधार्य करके रघुवीरजी प्रति वर्ष एक माह स्वामी का सत्संग करने के लिए ही जूनागढ़ जाते थे। मार्ग में कभी कभी गढ़पुर में मुकाम करते, तब गढ़पुर का त्यागीवृन्द उनको वही आशय से उन्हें रोक रखते थे कि स्वामी के सत्संग में से महाराजश्री की रुचि कम हो। किन्तु जूनागढ़ में स्वामी श्रीहरि से प्रार्थना करते थे कि रघुवीरजी की कुसंगियों से रक्षा करना, रघुवीरजी महाराज को श्रीहरि दर्शन देते, और कहते कि, 'जूनागढ़ जल्दी जाईए, वहाँ स्वामी आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं

और आप यहाँ क्या कर रहे हैं ?'

एकबार विचरण में रघुवीरजी महाराज ने स्वामी से पूछा,'स्वामी ! अंतर में शांति किस प्रकार होती है ?'

स्वामी ने कहा, 'जैसे गाय का बछड़ा जब गाय के थन में मूँह लगाएगा, तब उसको दूध का सुख आएगा ! ठीक उसी प्रकार यह सत्संग, मूर्तियाँ, शास्त्र, आचार्य आदि महाराज का शरीर है। परंतु बड़े एकांतिक संत तो गाय के थन की जगह है। उन संत के द्वारा महाराज निरंतर इस पृथ्वी पर प्रकट रूप से विराजमान है, अत: जब ऐसे संत में जीव की प्रीति हो, तभी महाराज का सुख आता है और शांति होती है !

इस प्रकार संवत् 1917 (सन् 1861) में उन्होंने भगवत्प्रसादजी महाराज को अपना उत्तरदायित्व सौंप दिया तथा वे तीर्थवासी होकर केवल एक सेवक के साथ जूनागढ़ जा पहुँचे। वहाँ प्रात:काल मंगला आरती से पूर्व अपने नित्यक्रम से निपटकर वे कथा में पहुँच जाते। कथा समाप्ति के बाद अपने निवास पर आकर खिचड़ी या बाटी अथवा मूंग की दाल स्वयं ही बना लेते ! तथा पुन: आकर कथा में बैठ जाते। राजभोग आरती के समय भोजन कर लेते और दोपहर के विश्राम का त्याग करके कथाश्रवण किया करते। आलस, निद्रा, रसास्वाद आदि को छोड़कर उन्होंने स्वामी का अत्यंत श्रद्धा और विश्वास के साथ सत्संग किया तो स्वामी ने उनके देहभाव की ग्रंथियाँ मिटा दी। और गुणातीतरूप बना दिया। स्वामी इसीलिए कई बार कहते थे कि 'पूरे वरताल में एक रघुवीरजी महाराज ने ही मुझे पहचाना।' क्योंकि उनके हृदय में दृढ़ निष्ठा थी कि स्वामी स्वयं प्रकट अक्षरब्रह्म है।

इस प्रकार उन्होंने जीते जी अक्षरधाम के आनंद की अनुभूति की, और संवत् 1919 (सन् 1863) को माघ शुक्ला द्वितीया के दिन नश्वर देह का त्याग करके श्रीजीचरण में स्थान प्राप्त कर लिया।

उन्होंने जब शरीर छोड़ा तब स्वामी का शरीर भी बुखार से संतप्त हो गया था। ऐसा स्वामी को भी उनके प्रति अपार प्रेम था। स्वामी कईबार कहा करते थे कि 'रघुवीरजी महाराज के समान दो आचार्य तथा गय राजा के समान एक राजा हो तो अब जो दो करोड़ लोग भगवान भजते हैं, उसके स्थान पर दस करोड़ लोग भगवान का भजन करने लगे। तथा श्रीहरि भी

कहते कि रघुवीरजी के समान धर्मकुल में अन्य कोई विलक्षण व्यक्तित्व नहीं है। उनकी रहन-सहन अथवा उनके समान गुणातीत स्थिति अन्य किसी की नहीं थी तथा उनके त्याग की रुचि तो श्रीहरि के समान ही थी।'

उन्होंने सड़त्रीस वर्ष तक आचार्य पद को सुशोभित किया। परंतु अपुत्र होने के कारण उन्होंने अपने भाई बद्रिनाथ के पुत्र भगवत्प्रसादजी महाराज को गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी चुन लिया।

वे साहित्यप्रेमी थे। उन्होंने निम्न लिखित ग्रंथों की रचना करवाई। (1) हरिलीलाकल्पतरुः (2) सर्वमंगलस्तोत्र की व्याख्या (3) शिक्षापत्री भाष्य और (4) जनमंगल स्तोत्र की व्याख्या।

उनके पवित्र करकमलों से निम्नलिखित मंदिरों की प्रतिष्ठा संपन्न हुईः वरताल में द्वारिकाधीश, गढ़डा में हरिकृष्णमहाराज और रेवती-बलदेव, जूनागढ़, घोलेरा, और खंभात में हरिकृष्ण महाराज, सुरत में नारायणमुनि तथा राधाकृष्ण देव, मुंबाई में हरिकृष्ण महाराज और गोलोकविहारी, तथा भरूच, माणावदर, उना, बुरहानपुर आदि गाँवों में भी उनके द्वारा प्राणप्रतिष्ठा हुई है।

उन्होंने स्वधर्ममय जीवन जीकर, संप्रदाय का सर्वप्रकार से उत्कर्ष करके श्रीहरि की आज्ञा के अनुसार रहकर यथार्थ रूप में अपने आचार्य पद को सार्थक किया था।

• • •

भक्तिमती
राजमाता कुशलकुंवरबाई

'और भगवान श्रीकृष्ण ने रुक्मिणीजी का अपहरण किया।' श्रीमद्भागवत के पुराणी ने जब उपर्युक्त शब्द पढ़े तब एकाग्रतापूर्वक कथा श्रवण करते हुए राजमाता कुशलकुंवरबाई भीतर से झकझोर उठीं! उनके अंतर में मानो एक दिव्य स्वर सुनाई दिया कि 'यदि इसी प्रकार मुझे भी भगवान प्रत्यक्ष रूप में मिल जाए, तभी मेरा कल्याण संभवित होगा।' उन्होंने मन की यह बात पुराणी से बताई। और कहा,

'विप्रदेव ! आप इस प्रकार कथा करते रहें और मैं सुनती रहूँ, इससे क्या लाभ ? जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने रुक्मिणीजी की कलाई पकड़ी थी, उसी प्रकार यदि प्रत्यक्ष भगवान हमारी कलाई पकड़ेंगे तभी हमारा उद्धार हो सकता है। '

कथा करते हुए ब्राह्मण ने भी इस बात में हाँमी भरी। ऐसी मुमुक्षु प्रकृति की राजमाता कुशलकुंवरबाई वलसाड़ जिले के तत्कालीन राज्य धरमपुर की महाराणी थी।

गुजरात की चारुतरभूमि धर्मज गाँव के महीडा राजपूत केसरीसिंह की दो संतानें थीं : कुमार उमेदसिंह और कुंवरी कुशलकुंवरबाई। बचपन से ही कुशलकुंवरबाई का रहन-सहन धर्माचारण से युक्त था। देवसेवा और भजन-भक्ति के रंग से उनका जीवन भक्तिपूर्ण बीत रहा था। विवाह योग्य होते ही उनके पिताजी ने धर्मपुर के सूर्यवंशी सिसोदिया कुल के कुमार सोमदेव के साथ उनकी धूमधाम से शादी मनाई। उस समय उन्होंने विपुल धनसंपत्ति देकर पुत्री को ससुराल भेजी थी। दोनों के सुखी दांपत्य जीवन में प्रभुकृपा से रूपदेवजी नामक पुत्र का जन्म हुआ। उनके घर भी विजयदेवजी नाम से पुत्र का जन्म हुआ। परंतु कुशलकुंवरबाई के जीवन में अचानक एक अकल्पनीय आघात आ पड़ा। वह था कुंवर रूपदेवजी का आकस्मिक निधन ! पिता, पति, और पुत्र के अवसान के दु:ख ने राजमाता के धैर्य की अनहद कसौटी की। परंतु उन्होंने ऐसे दु:खों को अपने भीतर ही भीतर समा लिया। पौत्र

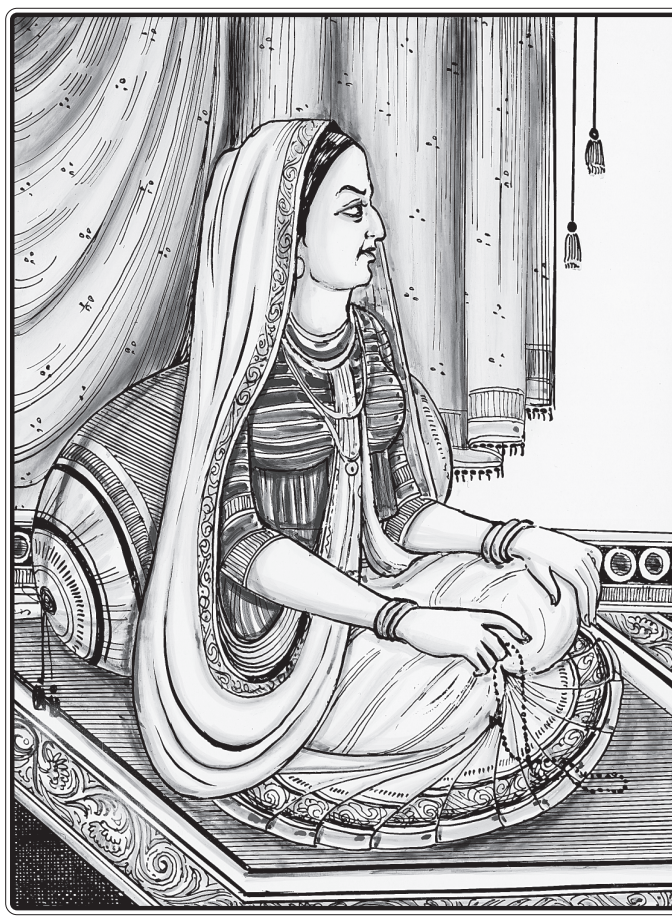

भक्तिमती राजमाता कुशलकुंवरबा

विजयदेवजी की अत्यंत छोटी उम्र के कारण पूरे राज्य का उत्तरदायित्व राजमाता के कंधों पर आ पड़ा। भगवत्परायण प्रकृति की राजमाता वैसे तो मायिक उपाधियों से दूर रहतीं। परंतु पौत्र विजयदेवजी सक्षम होने के बाद वे एक के बाद एक जिम्मेदारी उनके हाथों सौंप रही थी। पौत्र को राजवी घराने के अनुसार प्रशिक्षण देने का उन्होंने उचित प्रबंध किया। वे स्वयं भी सप्ताह में एकबार इच्छा न होने पर भी राज्य कारोबार का ध्यान रखतीं।

अधिकतर उनका समय भगवद्भक्ति और कथाश्रवण में ही व्यतीत होता था। राणीवास ने प्रतिदिन एक ब्राह्मण कथावाचन के लिए आता तथा एकाग्रतापूर्वक राजमाता उसकी कथा सुनतीं। उस समय उस कथावाचक ब्राह्मण तथा राणी बीच उपर्युक्त वार्तालाप छिड़ गया। इस घटना के बाद राजमाता के मन में भगवत्प्राप्ति की लगन और भी उत्कट बनी।

राणी को अन्य भी दो विशेष नियम थे: एक तो ब्राह्मणों से शुद्ध रसोई तैयार कराके हमेशा शीरा-पूरी का सदाव्रत चलाना, और धर्मशाला में पधारे वैरगियों तथा तीर्थवासियों का संध्यासमय पर चरणस्पर्श करना।

एकबार भगवान की इच्छा से श्रीहरि के परमंहस स्वामी परमचैतन्यानंदजी गाँवों में विचरण करते हुए धर्मपुर आ पहुँचे। वे सदाव्रत लेकर धर्मशाला में एक कोने में ध्यान लगाकर बैठे थे कि नियमानुसार संध्या के समय कुशलकुंवरबाई वैरागियों के पास आयीं। सबको चरणस्पर्श करते करते हुए वे जब परमचैतन्यानन्द स्वामी के पास आने लगीं, तब स्वामी चौंककर खड़े हो गए। अपने पैर अधिक से अधिक सिमटकर बोले, 'हम औरतों से दूर रहते हैं, इसलिए हमारा स्पर्श किसी भी स्त्री के लिए वर्ज्य है ! और हमें भी स्त्री-स्पर्श वर्ज्य है।' राजमाता को यह सुनकर भारी विस्मय हुआ। यद्यपि उनकी अवहेलना हुई थी, फिर भी उनकी जिज्ञासा अत्यधिक थी, उन्होंने पूछा, 'आप कौन है ?'

'हम स्वामिनारायण के संत है ।'

'वे स्वामिनारायण कौन हैं ?'

'वे तो कलिकाल में प्रकट हुए भगवान के अवतार हैं। '

स्वामी ने दृष्टि को दृष्टि में मिलाए बिना ही उत्तर दिया। 'स्वामिनारायण' शब्द सुनते ही कुशलकुंवरबाई को रोमांच हो गया। अंत्तर में

दिव्य प्रकाश की अनुभूति हुई। फिर तो अधिक जानकारी प्राप्त करने हेतु राणी ने स्वामी को अपने निवास पर पधारकर कथाश्रवण कराने के लिए निमंत्रित किए। दूसरे दिन राज्य के अधिकारियों के साथ स्वामी राणी के आवास पर पधारे, और वहाँ स्वामी ने महाराज के स्वरूपमहिमा की अद्‌भुत बातें कहीं। पूर्व के संस्कारों के कारण राणी को श्रीहरि के स्वरूप में दृढ़ प्रतीति हो गई। उन्होंने परमचैतन्यानन्द स्वामी को निवास के लिए एक बंगला दे दिया। राजमाता प्रतिदिन भिन्न-भिन्न प्रकार का भोजन बनवाकर स्वामी के लिए भेजतीं। स्वामी भी बड़े उमंग से उनको सत्संग तथा श्रीहरि की महिमा सुनाते थे। विजयदेवजी प्रतिदिन हाथी पर स्वामी की सवारी निकालकर गाँव से दूर हनुमानगढ़ी के दर्शन कराने ले जाते।

गढड़ा में श्रीहरि को यह जानकारी मिली तो परमचैतन्यानन्द स्वामी को लेने के लिए दो संतों को धर्मपुर जाने की आज्ञा की।

दोनों संत अत्यंत कष्ट के बाद धर्मपुर पहुँचे। श्रीहरि के संतों के दर्शन से स्वामी बहुत प्रसन्न हुए। संतों से श्रीहरि का संदेश पाकर स्वामी को भारी द्विधा का सामना करना पड़ा, उनका मन नहीं था कि वे धर्मपुर छोड़े। अत: संतों ने गढ़पुर लौटकर श्रीहरि को उनकी रुचि के विषय में बताकर सब कुछ स्पष्ट कर दिया। तब श्रीहरि ने कहा, 'जब हाथी फँस जाता है, तो उसे निकालने के लिए हाथी ही चाहिए। अर्थात् अब कोई समर्थ संत को भेजना ही मुनासिब होगा।' उन्होंने मुक्तानन्द स्वामी को धर्मपुर जाने की आज्ञा दी और कहा कि राजमाता सत्संग की बातें सुनना चाहे, तो बीच में पर्दा लगाकर एकाध घंटे तक उपदेश करना।

मुक्तानन्द स्वामी पचीस साधुओं के साथ भावनगर से जहाज में बैठकर वलसाड़ ऊतरे और संध्या से पूर्व चार बजे तो धर्मपुर पहुँच गए। ठीक उसी समय परमचैतन्यानन्द स्वामी कुंवर के साथ हाथी पर सवार होकर हनुमानगढ़ी जा रहे थे। मुक्तानन्द स्वामी के दर्शन करते ही स्वामी ने हाथी को झुकाने का आदेश दिया, हाथी झुका, और स्वामी एकदम नीचे उतरकर मुक्तानन्द स्वामी को दंडवत्‌प्रणाम करने लगे। मुक्तानन्द स्वामी का सबको परिचय करवाया। सब दरबारगढ़ में आ पहुँचे। यहाँ कुशलकुंवरबाई को संदेश भेजा गया कि मेरे गुरु मुक्तानन्द स्वामी धर्मपुर पधारे हैं। यह

धन्यभाग्य का अवसर हैं। राणी ने जानकर अत्यंत भक्तिभाव व्यक्त किया, और उचित सम्मान करके विविध भोजन का थाल भी भेजा।

राणी ने जब कथाश्रवण की इच्छा व्यक्त की, तब मुक्तानन्द स्वामी ने बताया कि श्रीहरि ने मुझे पर्दा लगाकर घंटेभर बात करने का आदेश दिया है, अतः पर्दा और घड़ी का इन्तजाम कर दे। स्वामी के आदेश अनुसार व्यवस्था हो गई और उनकी अनुभववाणी सुनते ही राजमाता को श्रीहरि के प्रत्यक्ष दर्शन की झंखना जाग गई। उन्होंने स्वामी से संदेश भेजा कि मुझे श्रीहरि के दर्शन की अभिलाषा है, आप कुछ भी करें, लेकिन श्रीहरि यहाँ पधारे, एसी व्यवस्था करें।'

स्वामी ने प्रत्युतर में कहा कि 'परमचैतन्यानन्द स्वामी को श्रीहरि के लिए निमंत्रण पत्र देकर गढ़डा भेजिए, वे आपके भक्तिभाव का न्यौता अवश्य स्वीकार करेंगे और यहाँ पधारेंगें।' कुशलकुंवरबाई ने अति प्रेमभाव से घान के एक-एक कण के छिलके स्वयं अपने हाथ से दूर करके चावल के अक्षुण्ण दाने सेरभर तैयार किए, साथ निमंत्रणपत्र भी रखा, और परमचैतन्यानन्द स्वामी हरिभक्तों के साथ श्रीहरि को निमंत्रण देने के लिए गढ़पुर पहुँच गए।

वह संवत् 1874 (सन् 1818) का वर्ष था। यहाँ कार्तिकी पूर्णिमा के उत्सव के बाद श्रीहरि, गोपालानंद स्वामी और संतों-हरिभक्तों का संघ वरताल, बोचासण होकर मही, नर्मदा और तापी जैसी नदियाँ पार करके सुरत होते हुए घर्मपुर पधारें।

महाराज के आगमन का समाचार सुनते ही विजयदेव सुशोभित हाथी, घोड़े, रथ, पालकी और सशस्त्र सैन्य लेकर एक कोस तक स्वागत के लिए सामने पहुँचे। श्रीहरि के दर्शन करके वे उनके चरणों में गिर पड़े। फिर उनको हाथी पर विराजमान करके नगर की ओर चल दिए। बड़ी धूमधाम से श्रीहरि का स्वागत पूरे शहर में मनाया गया। भव्य हवेली में उनका निवास था। पोष कृष्णा दशवीं का यह शुभ दिन सत्संग के इतिहास में अमर हो गया।

जिनकी प्रतीक्षा में दिनरात बीते थे, ऐसी मनभावन मूर्ति श्रीहरि के दर्शन करते ही कुशलकुंवरबाई का मन मानो, दिव्य शांत तेज में तैरने लगा।

उन्होंने एकदम श्रीहरि के चरण थाम लिए। देह का होश पूर्णतः गँवा दिया, उनकी आँखें प्रेमाश्रु का भावप्रवाह बरसाने लगीं। महाराज ने उसी क्षण उनका हाथ पकड़कर उनको भूमि से उठा लिए। होश में आते ही कुशलकुंवरबाई की वृत्ति उनके दिव्य स्वरूप में एकतार हो गई। उन्होंने कहा, 'महाराज, जिस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान ने रुक्मिणीजी का हाथ पकड़ा था, उसी प्रकार आज आपने मेरी बांह पकड़ ली है। हे प्रभु, बस मुझे और कुछ नहीं चाहिए। आज मेरा कल्याण निश्चित हो ही गया है। ' महाराज ने उनकी भावना को दृढ़ करते हुए कहा, 'आप बहुत जन्मों से मोक्ष के लिए प्रयत्न करतीं थीं। अहमदाबाद के पास अडालज गाँव की विशाल बावड़ी भी आपने ही तो पूर्व जन्म में निर्माण करवाई थी। उसी सत्कार्य के पुण्य प्रताप से आज आपको हमारा सत्संग हो गया।'

श्रीहरि जब बोल रहे थे, राजमाता को एक शब्द भी सुनने का होश नहीं था। ऐसे ही प्रत्यक्ष दर्शन की प्यास को बुझाने के लिए उन्होंने श्रीहरि से पूछ लिया, 'हे महाराज! आपने आपके उत्तर में लिखा था कि अनिर्देश से लिखावितं स्वामीश्री सात सहजानंदजी महाराज' वह अनिर्देश से आपका क्या मतलब है ?'

श्रीहरि ने राजमाता के भाव को ताड़ लिया और कहा, 'सुनिए, यह आपका महल है वह निर्देश है, और यह आपका शहर है वह अनिर्देश है और पृथ्वी निर्देश है, जल अनिर्देश है।' इस प्रकार उत्तरोत्तर तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, प्रधान और प्रकृतिपुरुष तक निर्देश-अनिर्देश को समझाते हुए कहा, 'प्रकृति पुरुष निर्देश है और उससे परे अक्षरधाम अनिर्देश है। वहाँ रहकर हम यह पत्र लिखवाते हैं ऐसा मतलब था।' श्रीहरि ने विस्तारपूर्वक जब तक उत्तर दिया, तब तक कुशलकुंवरबाई उनकी रसघन मूर्ति को अपलक निहारती रहीं और उस मूर्ति को अपने हृदय में प्रस्थापित कर दी ! ऐसा अनमोल लाभ पुनः मिलेगा या नहीं, ऐसे संदेह से भावविभोर बनकर राणी ने श्रीहरि की प्रेमार्द्रभाव से स्तुति की और उनको छः महीने तक धर्मपुर में ही निवास करके सबको लाभन्वित करने की प्रार्थना की। साथ-साथ सौराष्ट्र से भी सैकड़ों हरिभक्तों को बुलाने की विनती की। जिनकी पूर्ण सुविधाओं का भार अपने सर पर उठाने की तैयारियाँ भी बताई।

श्रीहरि ने कहा, 'यदि सौराष्ट्र के भक्त आएँगे, तो साथ उनके घोड़े भी लाएँगे, उसकी लागान भरना भी तो उनके लिए मुश्किल हो सकता है। और चोर-लूटेरों का भय भी तो जंगल के रास्ते में कम नहीं है। '

कुशलकुंवरबाई ने तुरंत ही उपाय बता दिया, 'महाराज, हम भरूच शहर की लागान माफ़ करवा सकते हैं। रास्ते में हमारे सैकड़ों शूरवीर शस्त्रधारी सैनिकों के द्वारा चौकियाँ बिठा दी जाएँगी। लेकिन आप उन सबको यहाँ अवश्य बुलाईए।' राजमाता के एसे भाव ने ही महाराज को भीगो दिया। निमंत्रणपत्र लिखकर उन्होंने सब को बुला लिए। राजमाता ने भी महाराज, संतों और निमंत्रित भक्त समुदाय की सेवा-सुविधाओं के लिए पूरे राज्य के अधिकारियों को तैनात कर दिए थे। विविध भोजन का प्रबंध रोज नवीन सामग्री लेकर होता था। राजमाता प्रत्येक सुविधा पर स्वयं देखभाल रखतीं थीं। उनको जब इस बात का पता चला, कि महाराज के दर्शन में विलंब न हो इसी कारण सब संत रूखा-सूखा या कच्चा-पक्का भोजन खा लेते हैं, अत: बीमार हो जाते हैं। राजमाता ने फौरन संतों के भोजन की सेवा में चार रसोईये को भेज दिए। एक दिन उनके खयाल में आया कि सभी संत भोजन से पूर्व अपने काष्ट के पात्र में तीन अंजलि भरके पानी डालते हैं फिर नि:स्वाद हुआ भोजन करके संतुष्ट होते हैं। उन्होंने महाराज से प्रार्थना की कि 'हे महाराज, आप संतों से आज्ञा दीजिए कि भोजन में पानी न डाले ! क्योंकि, इस प्रदेश का पानी पचने में भारी है, इससे पेट की बिमारियाँ हो सकती हैं !' उनको महाराज और संतों के प्रति ऐसी अनन्य आत्मीयता थी, जैसी माँ को अपने भरेपूरे परिवार के साथ होती है।

राजमाता कुशलकुंवरबाई अपने इष्टदेव और संतों के लिए उत्तम मिठाईयाँ दूर दूर के गाँव-शहरों से मंगवाती थी। गन्ने की गाड़ियाँ लाना तथा ताजा गुड़ भिजवाना उनका क्रम हो गया था। दूध, दहीं, घी, सक्कर तो ढेर सारे भेजतीं रहतीं थीं। कुशलकुंवरबाई के मन में एक ही भावना थी कि महाराज कैसे प्रसन्न हो !

माता के आग्रह से पौत्र विजयदेव ने खूब ठाट से नगर में श्रीहरि की सवारी निकाली। और नगरजनों को श्रीहरि के दर्शन का सुयोग करवाया। हनुमानगढ़ी पर महाराज और संतों को पधराये। कुंवर अश्वविद्या में निपुण

ाथे, अतः श्रीहरि को अपनी कला दिखाकर बहुत प्रसन्न किए।

अन्य संतों के मंडल, सुरत के प्रेमी भक्तों का संघ तथा गढ़पुर से जीवुबाई आदि बाई भक्त भी श्रीहरि की आज्ञा से यहाँ पहुँचे। महाराज ने कुशलकुंवरबाई को आदेश दिया कि जीवुबाई को आप अपने साथ ही रखना। जिससे आपको उनके नित्य सत्संग का लाभ मिलता रहे।

श्रीहरि भी संतों-भक्तों को निरंतर कथावार्ता करते और बहुत सुख देते थे। संतों भी निरंतर कथावार्ता का लाभ देते थे। श्रीहरि स्वयं भोजन की पंक्ति में विविध प्रकार के भोजन परोसने पधारते और सबके साथ नदी में स्नान करने जाते। नगर के अनेक मुमुक्षुओं के घर पधरावनी करते। निकट के गाँव वांसदा में राजा रायसिंहजी के महल में भी श्रीहरि की पधरावनी हुई और कृपाप्रसाद देते हुए प्रभु ने उनको अपने चरणाविंद की छाप भेंट दी।

वसंत पंचमी का उत्सव श्रीहरि ने रंगोत्सव करके यहीं मनाया। करीब दो सौ भील(वनवासी) एक अवसर पर उनके दर्शन के लिए आए थे। राणी ने श्रीहरि को संदेश भेजा कि इन सभी भीलों को वर्तमान दीक्षा घारण कराएँ। और सत्संग के नियमों से उनके जीवन उन्नत बनाएँ। श्रीहरि रंग के बड़े बड़े होज से रंग लेकर भीलों के उपर छिड़कने लगे। भीलों के साथ साथ पूरा भक्तसमुदाय भी इस लीला को देखकर दिव्य आनंद में निमग्न हो गए। श्रीहरि ने रंग उड़ाकर कहा, 'इस रंग की बूँद भी जिनके शरीर पर पड़ी हो, उन सबका कल्याण !' उनकी अपार करुणा से वनवासी सब धन्य हुए।

कुशलकुंवरबाई की आज्ञा से कुंवर विजयदेव ने एक दिन भारी भारी अमूल्य वस्त्राभूषण श्रीहरि को भेंट करके पूजन-आरती का लाभ लिया। राणी ने उनके चरणों में विनती की, 'हे महाराज ! यह राज्य, तथा धन के भंडार सब कुछ आपका है। आप यहाँ निरंतर रहें, बड़े बड़े यज्ञ कीजिए। हम तो केवल सेरभर खाकर जीवन जी सकते हैं, इस संपत्ति में से हम तो मात्र सेरभर अनाज के ही हिस्सेदार रहेंगे, बाकी सब कुछ आपका है, दासभाव से आपकी सेवा करना ही हमारा लक्ष्य है। ' इस प्रकार राणी ने खूब प्रार्थना की।

श्रीहरि ऐसी भावना देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'हम इस

लोक में राज्य करने नहीं आये हैं। हमें तो अनेक जीवों के कल्याण करने हैं और आप भी राज्य की वासना मत रखना। वरना आपको भी दूसरा जन्म लेना पड़ेगा। ' राणी ने श्रीहरि से पुनः प्रार्थना की, 'महाराज, मैं तो आपके दर्शन की प्रतीक्षा कर रही थी, अब आप मुझे निर्वासनिक करके आपके धाम में ले जाएँ। '

श्रीहरि ने मुस्कुराकर संमति दिखाई। राजमाता ने चरणों में रुपयों के थाल समर्पित किए। इन सुवर्णमुद्राएँ श्रीहरि ने राज्य के नौकरों को बांटना शुरू कर दिया। राजमाता के मनोरथों को पूर्ण करने के लिए श्रीहरि ने अंतःपुर में, शस्त्रागार में तथा विविध भवनों में भी पधरावनी करके पूरे राजभवन को तीर्थत्व प्रदान किया।

श्रीहरि की बिदाई के दिन आ गए। लेकिन कुशलकुंवरबाई का प्रेमभाव अनन्य था। श्रीहरि को और अधिक रहकर लाभ देने के लिए उन्होंने बहुत आग्रह किया, उनकी आँखें विरह के कारण अविरत आँसू बरसाती रही थी। आखिर महाराज ने जाते समय उनसे कुछ अलग प्रकार की ही चेतावनी दी, 'आप इस दाढ़ीवाले को कचहरी में सामने बिठाकर उनके साथ व्यावहारिक बातें करतीं हैं, लेकिन अंतकाल में आपको वही दिखाई देगा। अतः उनकी तथा आपकी बैठक अलग रखा करो। आपकी बैठक में हमारे चरणारविंद रखकर आप अपनी वृत्ति उसीमें रखती रहो। दोनों भाईयों को समीप रखकर ही हमेशा कथावाचन करवाती रहो, आप ऐसी कथा सुनकर अत्यधिक पवित्र होंगीं।'

महाराज की इन सूचनाओं को राजमाता ने शिरोधार्य की। श्रीहरि ने प्रसन्न होकर चंदनरसित चरणारविंद की छाप प्रसाद के रूप में प्रदान की।

श्रीहरि की बिदाई के समय कुंवरसाहब ने उनकी हाथी पर सवारी निकाली, और अधिकारियों तथा प्रजाजनों के साथ श्रीहरि को एक कोस तक बिदा देने के लिए गए थे, किन्तु राजमहल में कुशलकुंवरबाई की दशा बहुत बुरी थी। उनके दिल पर श्रीहरि की बिदाई से भारी आघात लगा था। महाराज की आज्ञा का पालन और उनके स्मरण में ही उनके दिन गुजरते थे। उनके निवास के दरम्यान जो भी दिव्य आनन्द लिया था, और उनकी बाईस बार आरती उतारी थी, उन लीलाओं की स्मृति करते हुए उनके दिन बीत रहे

थे।

श्रीहरि के घर्मपुर के बिदा होने के बाद ठीक पंद्रह दिन के पश्चात् कुशलकुंवरबाई ने श्रीहरि का स्मरण करते हुए अपना नश्वर शरीर छोड़ दिया। दरबारगढ़ चारों और दिव्यप्रकाश से आलोकित हो उठा। महाराज ने उसी क्षण गढ़डा में जीवुबाई और लाडुबाई से कहा कि आज घर्मपुर में कुशलकुंवरबाई ने शरीर छोड़कर अक्षरधाम में निवास कर लिया है।

धन्य है ऐसे नारीरत्न को जिन्हों ने अपार भक्तिभाव से संप्रदाय के इतिहास में अपना नाम अमर कर लिया।

• • •

भक्तराज पर्वतभाई

सद्‌गुरु रामानन्द स्वामी ने सौराष्ट्र में विचरण करके हज़ारों मुमुक्षुओं को सत्संग की दृढ़ता कराई थी। गुजरात के जूनागढ़ जिले के गाँव अगत्राई के पर्वतभाई भी रामानंद स्वामी के आश्रित सत्संगी थे। कुनबी जाति के ये भक्त पूर्व के संस्कार बल से निरंतर भगवान के स्वरूप में ध्यानमग्न रहते थे। श्रीहरि के सर्व प्रथम दर्शन होते ही उनको निश्चय हो गया था कि 'ये तो अक्षरधाम के अधिपति साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम नारायण हैं, और सर्व अवतार के अवतारी हैं !' ऐसा था उनका महात्म्यज्ञान सहित निश्चय। एक बार श्रीहरि के दर्शन के लिए वे लोज आए। श्रीहरि ने बातों-बातों में सरल-भाव से कहा कि 'सदाव्रत देने में कभी कभी अनाज की कमी पड़ जाती है।'

अनुवृत्ति के पालक पर्वतभाई यह सुनते ही घर पहुँचे। घर से लगभग 256 मन अनाज बैलगाड़ियों में भरकर लोज ले आए। श्रीहरि तो देखते ही रह गए। पर्वतभाई अनाज की गाड़ियाँ खाली कर रहे थे कि महाराज ने पूछा, 'घर पर बच्चों के लिए कुछ रखा है कि नहीं ?'

पर्वतभाई ने हँसते हुए कहा, 'महाराज, कुनबी का बच्चा तथा मुर्गा कभी भी भूखा नहीं मरता !' श्रीहरि तथा मुक्तानन्द स्वामी उनका ऐसा समर्पण देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए।

श्रीहरि कई बार काठी (राजपूतों की सौराष्ट्र में रहनेवाली एक जाति) हरिभक्तों के समक्ष पर्वतभाई की भक्ति, समर्पण आदि की प्रशंसा करते रहते कि 'सत्संग में पर्वतभाई जैसा समर्पित कोई हरिभक्त नहीं है।'

काठियों को भी ऐसे प्रेमी भक्त के दर्शन करने की उत्कंठा जाग्रत हुई। श्रीहरि ने काठियों के उत्साह को देखकर कहा कि 'जब जूनागढ़ जाएँगे तब जरूर अगत्राई जाएँगे।' इसी अरसे में श्रीहरि को जूनागढ़ जाने का प्रसंग आया। अत: वे काठी दरबारों का संघ लेकर पर्वतभाई के यहाँ अगत्राई पहुँचे।

श्रीहरि और हरिभक्तों के दर्शन से पर्वतभाई आनंद-मग्न हो गए। खटियाँ बिछाकर श्रीहरि को विराजित किए और उनके चरण दबाने लगे।

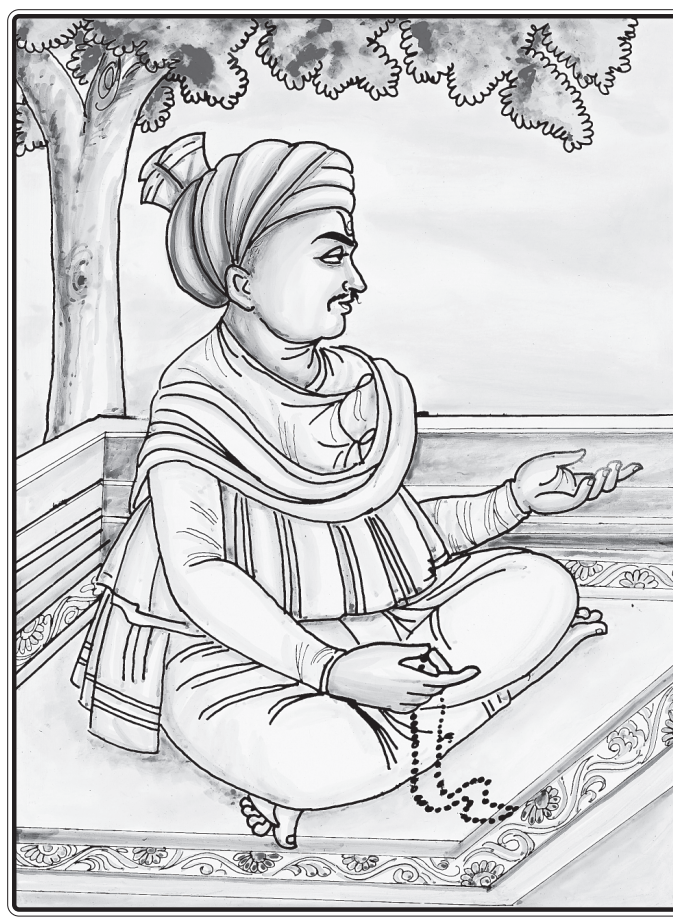

भक्तराज पर्वतभाई

काठी दरबार तो घोड़ों के लिए खूँटे तथा घास-चारे के लिए इधर-उधर खोजने लगे। अन्त में कुछ हाथ न लगने पर उन्होंने श्रीहरि से शिकायत की, तुरन्त ही महाराज ने पर्वतभाई से पूरी व्यवस्था करने के लिए आदेश दिया। इस पर पर्वतभाई ने कहा कि 'महाराज, जब घर के मालिक (स्वामी) आप स्वयं यहाँ आए, तब नौकर को क्या चिंता?'

श्रीहरि ने हँसते हुए काठियों से कहा कि 'देखो तो जरा, इसने तो हम को ही घर के मालिक बना दिए, अब हमको ही तुम्हारी सारी समस्याओं का समाधान तथा चिंता करनी पड़ेगी।'

फिर पर्वतभाई ने बाजरे की बरवार और घास-चारे का कोठार काठीओं को बताया। काठी हरिभक्तों ने बाजरा भर-भर कर घोड़ो के सामने डाला और घोड़ों के लिए घास-चारे का कोठार खुला छोड़ दिया। श्रीहरि ने यह देखा तो काठी हरिभक्तों को टोका कि अपने घर पर आप इस तरह अनाज को बिगाड़ते रहते हो क्या? काठी सब समझ गए, लेकिन पर्वतभाई के मन में उनके प्रति तनिक भी अरुचि नहीं हुई। उनके भावसभर आतिथ्य सत्कार से काठी हरिभक्त भी अत्यंत प्रसन्न हुए।

महाराज ने भोजन समारंभ का आयोजन करवाया। गुड़, चावल और पूरी मात्रा में घी मिले फिर काठी हरिभक्तों के लिए तो वाह वाह ! रसोई तैयार होते ही सर्व प्रथम पर्वतभाई ने श्रीहरि को स्नेहभाव से भोजन करवाया। तत्पश्चात् काठी हरिभक्तों को भी पंक्ति में बिठा दिए। सर्व प्रथम गुड़ और चावल परोसे गए। श्रीहरि स्वयं परोसने के लिए निकले थे। पर्वतभाई ने अपने गले पर हाथ रखकर महाराज से सौगंध दी कि 'आप यदि घी का घारा प्रवाह न बहाते रहें, तो आपको मेरी कसम है!' काठी हरिभक्तों ने भी निश्चय कर लिया, कि महाराज भले ही जितना घी परोसे कोई मना मत करना। श्रीहरि तब तक घी डालते रहते, जब तक काठियों की कटोरी घी से भर न जाय, काठी हरिभक्त 'ना ना' करके खड़े हो जाते, फिर भी वे रुकने का नाम नहीं देते !

घी का प्रवाह निरंतर रखने से दो पात्रों के बीच घी की घारा अविरत ढलती रही थी। इस प्रकार की श्रीहरि की लीला से आनन्द विभोर पर्वतभाई नाचने-उछलने लगे। और बोले, 'अरे, वाह रे वाह! मेरे प्रभु की लीला तो

देखिए! ऐसी लीला कभी नहीं देखी!' काठी हरिभक्त विस्मित होकर देखते रहे, और उनके स्नेहभरे उद्‌गार निकल पड़े कि 'वाह! पर्वत वाह! दूसरे पर्वत तो कभी अपनी जगह से चलायमान हो सकते हैं, लेकिन यह पर्वत कभी भी अपनी निष्ठा से चलायमान नहीं हो सकता!' अंत में काठी हरिभक्त अपने आप बोल उठे कि 'महाराज, जिस प्रकार आप पर्वतभाई की प्रशंसा कर रहे थे, वे ठीक वैसे ही है!'

एकबार पर्वतभाई अपने खेत में हल जोत रहे थे, उनके मन में संकल्प हुआ कि 'भगवान ने किस तरह वराह अवतार धारण किया होगा?'

अंतर्यामी श्रीहरि ने इस संकल्प को जानते ही सोच लिया कि पर्वतभाई ने आज एक अवतार देखने का संकल्प किया है, कल अन्य अवतार के लिए सोचेंगे, तो आज ही क्यों नहीं में चौबीसों अवतार एक साथ ही उन्हें दिखा दूँ।

पर्वतभाई हल जोतते महाराज की मूर्ति का चिंतवन कर रहे थे कि वहाँ अचानक शांत तेज प्रकट हुआ और तेज में पर्वतभाई को चौबीसों अवतारों के एक साथ दर्शन हुए। पर्वतभाई अत्यंत आश्चर्य से बोल उठे, 'वाह! भाई वाह! महाराज की कृपा तो देखो, जिन्होंने मुझे एक साथ चौबीसों अवतारो के दर्शन करवाये। ' फिर पर्वतभाई ने सोचा कि 'इन सभी अवतारों के कारण कौन होंगे?' ठीक उसी क्षण चौबीसों अवतार एक-एक करके महाराज की मूर्ति में प्रविष्ट होने लगे। पर्वतभाई की सब भ्रांतियाँ तुरंत निर्मूल हो गई, और अधिक दृढ़ता हुई कि सभी अवतारों के कारण तो ये भगवान स्वामिनारायण ही है!

पर्वतभाई महाराज की मूर्ति निरंतर देखते और गोलोक-वैकुंठादिक धामों तथा अक्षरधाम के भी दर्शन करते। ब्रह्मांडों की रचना को भी देखते। जैसे किसी के पास चिंतामणि होती, और वह जो-जो वस्तु या पदार्थ को चाहता, वह उसे प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार पर्वतभाई को भी महाराज की मूर्ति का निरंतर चिंतवन था, अतः वे भी अपने मन में जो संकल्प करते वो पूर्ण हो जाते थे।

एकबार पर्वतभाई खेत में हल चला रहे थे। दोपहर का समय था। पर्वतभाई ने मानसी पूजा करते हुए महाराज को नैवेद्य अर्पण किया और वे

महाराज की मूर्ति में इतने लीन हो गए थे कि उनकी गति धीमी हो गई। तभी साथ-साथ हल चलाने वाले सहायक को लगा की पर्वतभाई का सिर चकरा रहा है या फिर वे नींद खींच रहे हैं! अतः वह पर्वतभाई को सहारा देने गया। पर्वतभाई उसके जरा से स्पर्श से ही थोड़े से काँप गए और अचानक हल पर दही गिरा।

यह देखते ही वह स्तब्ध रह गया, और पर्वतभाई से पूछा कि 'यहाँ दही कहाँ से ?'

पर्वतभाई ने कहा कि 'भाई, मैं मानसी पूजा करता था, और महाराज को नैवेद्य अर्पण कर रहा था। थाल में दही और बाटी रखी थी। महाराज यह भोजन अवश्य अंगीकार कर रहे हैं, ऐसे मेरी भावना थी, और वह हुआ ही था, कि तूने इसी बीच विघ्न डाल दिया! और मेरे हाथ से दही गिर पड़ा।'

वह साधारण आदमी पर्वतभाई की ऐसी स्थिति देखकर दंग रह गया, और उसे श्रीहरि तथा पर्वतभाई के प्रति अनन्य श्रद्धा जागृत हुई। पर्वतभाई भी अपने सम्पर्क में जो कोई आता, चाहे वह मजदूर हो या नौकर पर्वतभाई का, सदाचरण, सुन्दर स्वभाव आदि को देखकर सत्संगी बन ही जाता।

एक बार श्रीहरि ने एक पत्र लिखकर मयाराम भट्ट के द्वारा पर्वतभाई को पहुँचाया। अगत्राई पहुँचकर मयाराम ने पर्वतभाई को पत्र दिया, उसे पढ़ते ही पर्वतभाई श्रीहरि से मिलने गढड़ा के रास्ते पर चल दिए ! किसी ने तुरन्त ही पर्वतभाई को खबर दी, 'पर्वतभाई, आपका छोटा बच्चा आज बीमार हैं, इतना ही नहीं, वह मरणासन्न दीख रहा है। कभी भी जान गँवा सकता है, तो आज आपको रुक जाना चाहिए।'

पर्वतभाई ने निश्चय पूर्वक उत्तर दिया कि 'महाराज का मुझे संदेश है, कि जल्द ही गढड़ा पहुँचे! अतः मैं एक पल भी ठहर नहीं सकता।' पर्वतभाई अभी तो गाँव की रहावन पर ही पहुँचे थे कि एक व्यक्ति दौड़ता हुआ आ पहुँचा। उसे देखते ही पर्वतभाई को अन्दाजा लग गया कि कुछ ऐसा ही समाचार होगा कि बेटे का शरीर छूट गया है। उन्होंने अपने गले में सफेद वस्त्र लपेट दिया। और पूछा कि 'क्यों आए हो ? यदि मेरा बेटा मर गया है, तो आप सब उसको अग्निदाह दे देना। मैं तो अब वापस नहीं लौटूँगा।' ऐसा कहकर पर्वतभाई ने तालाब में स्नान कर लिया और गढ़पुर

की और चल दिए। वह आदमी निराश होकर वापस लौट गया!

पर्वतभाई गढड़ा पहुँचे और महाराज को दंडवत्प्रणाम कर चरणस्पर्श किए। पर्वतभाई की अध्यात्मस्थिति एवं स्थितप्रज्ञता का अन्य भक्तों को भी परिचय हो इसी कारण अंतर्यामी प्रभु ने पूछ लिया, 'तुम्हारा बेटा बीमार था, क्या वह ठीक तो है न ?'

पर्वतभाई ने नम्रता से उत्तर दिया, 'महाराज, मेरा बेटा तो एकदम ठीक हो गया है। क्योंकि अब उसे न तो हल जोतना पड़ेगा, न तो खेत में मजदूरी करनी पड़ेगी! वह तो नश्वर संसार को छोड़कर अक्षरधाम में आपकी सेवा में बैठ गया हैं।' महाराज ने यह बात सुनकर उनको बहुत आशीर्वाद दिए और सभाजन सब विस्मित होकर दु:ख के भाव में डूब गए।

एकबार महाराज अगत्राई पधारे। पर्वतभाई श्रीहरि और सभी संतों को हरिभक्तों की अपने खेत में ले लए। खेत में गन्ने की फ़स्ल लहरा रही थी। उनमें से अच्छे से अच्छे गन्ने चुनकर पर्वतभाई ने श्रीहरि के सामने रख दिए। श्रीहरि से इसको अंगीकार करने का आग्रह किया। श्रीहरि पर्वतभाई के भाव को देखकर गन्ना खाने लगे। फिर दोनों हाथों में गन्ने के टुकड़े भरकर पर्वतभाई को भी दिया। पर्वतभाई ने उसे छुए बिना ही कहा कि 'मेरा नियम है कि पहले मेरे इष्टदेव भोजन ग्रहण करेंगे, तब मैं कर सकता हूँ!'

श्रीहरि ने आश्चर्य से पूछा। 'तुम्हारे इष्टदेव मेरे सिवा और कौन है ?' पर्वतभाई ने विवेक पूर्ण उत्तर देते हुए कहा कि 'महाराज, मेरे इष्टदेव है ये संतों। क्योंकि आपकी पहचान इन संतों ने ही करवाई है। इसलिए पहले संत इसे ग्रहण कर ले, तब मैं इसे ले सकता हूँ। हे महाराज, आपने जब से संतों को खटरस के त्याग के नियम दिए हैं, तब से मैंने भी छहों रसों के त्याग के ले नियम लिए हैं।'

महाराज यह बात जानकर बहुत प्रसन्न हुए और संतों को खटरस का नियम समाप्त करवा दिया! पर्वतभाई ने भी तभी गन्ने खाएँ जब संतो ने खाएँ। इस प्रकार उन्होंने डेढ़ साल तक संतों के साथ ही खटरस के नियम का यथार्थ पालन किया था! संतों के साथ कितनी अपार आत्मबुद्धि!

ऐसे भगवन्निष्ठ भक्तों के व्यवहार की देखभाल श्रीहरि स्वयं करते थे। एक बार पर्वतभाई श्रीहरि के पास गढ़डा पधारे। पर्वतभाई के खेत पर

कोई देखभाल करनेवाला न रहा, और चोर लोगों ने भी निर्जनस्थान देखकर चोरी करने का मौका चुन लिया! खेत में गेहूँ की अद्‌भुत फ़स्ल लहरा रही थी। चोर चोरी करने के लिए जैसे ही खेत में घूसे कि उनको पीछे से कोई ने जोरों की मार मार दी! चोरों ने सोचा कोई पहरेदार यहाँ अवश्य छिपे होंगे! वे दूम दबाकर भागे! और खेत के दूसरे छोर से गेहूँ काटने लगे ! उनको वहाँ भी ऐसा ही अनुभव हुआ! उन्होंने तुरंत परखने का प्रयत्न किया कि इतने जोर से हमें कौन पीट रहा है? परंतु उनको कोई दिखाई नहीं दिया। सभी चोर वहाँ से ऐसे भागे कि किसीने पीछे ताकने की भी हिम्मत नहीं की! पर्वतभाई की भक्ति के कारण ही भगवान ने उनके खेत की रक्षा की।

कईबार तो पर्वतभाई ऐसे चोरों को सामने से बुलवाकर उनको अनाज वगैरह दे देते, और उनको श्रीहरि की महिमा समझाते। कभी कभी अपने खेत मजदूरों को भी श्रीहरि की महिमा समझाते व्यसनमुक्त करते और सत्संगी बनाते थे।

एकबार गढ़पुर में दादाखाचर का नौकर बीमार हो गया। अत: सभा में जो कोई आता उनसे श्रीहरि पूछते कि 'क्या आप दादाखाचर के नौकर बनेंगे?' लेकिन सब मना कर देते!

काठी दरबार तो कहते थे कि 'हमारे वहाँ क्या कमी है, जो हम दादाखाचर के नौकर बनें ? हमारे घर तो भगवान की मेहरबानी है?

श्रीहरि ने अब पर्वतभाई का स्मरण किया। ठीक उसी समय पर्वतभाई ने सभा में प्रवेश किया। जैसे ही उन्होंने महाराज को प्रणाम किया कि श्रीहरि ने उनसे पूछा, 'क्या आप दादाखाचर के नौकर बनेंगे ?' पर्वतभाई ने एक पल का भी विलम्ब नहीं किया और हाथ जोड़कर बोले, 'हाँ महाराज, अवश्य! मैं उनका नौकर अवश्य बनूँगा। ' और आगे कहा, 'महाराज! हम हमारे परिवार के गुलाम तो है ही! फिर ये तो आपके-स्वयं पुरुषोत्तम के उत्तम भक्त हैं, उनके गुलाम होने से तो हम धन्यभागी होंगे!'

एकबार श्रीहरि ने भक्तजनों की परीक्षा करते हुए पूछा, 'जो कोई हमारे इस पलंग के सत्संगी हो वे मेरे पास बैठिए, और जो सत्संगी के सत्संगी हो वे सब पीछे जाकर बैठिए।' तब कई संत-हरिभक्त उठकर पलंग

के आसपास आकर बैठ गए परंतु केवल एक पर्वतभाई ही दूर बैठे रहे। सब के मन में हुआ कि पर्वतभाई को कुछ समझ में आ रहा है या नहीं ? परंतु इतने में श्रीहरि अचानक उठकर जहाँ पर्वतभाई बैठे थे वहाँ जाकर उनके पास बैठ गए। तब सबको पता चला कि श्रीहरि की प्रसन्नता उसी में है कि हम भक्त के भक्त हो जाए! सबको भगवान के भक्त होना अच्छा लगता है, किन्तु भक्त के भक्त होना ही दासत्वभक्ति का उत्तम लक्षण है।

एकबार भयंकर अकाल पड़ा था। हरिभक्तों को कष्ट झेलना न पड़े इसी कारण श्रीहरि ने संतों को गाँवों में विचरण करने की मना कर दी। तब पर्वतभाई ने श्रीहरि से विनती की, 'महाराज! हमारे लिए तो दो अकाल पड़े।'

श्रीहरि ने विस्मय से पूछा, 'ऐसा क्यों?'

पर्वतभाई ने कहा, 'एक तो अकाल के कारण अन्न-जल का कष्ट तो है ही, और दूसरा, हमारे घर संतों को आने-जाने की आपने मनाकर दी!' तो हमें संतों की सेवा का और सत्संग का मौका कहाँ से मिलेगा? यह हमारे लिए दूसरा अकाल है!'

पर्वतभाई की ऐसी भावना देखकर श्रीहरि खूब प्रसन्न हुए और संतों को उनके गाँव भेजें। ऐसी उनकी दासत्वभक्ति थी।

श्रीहरि के प्रत्यक्ष सत्संग की पर्वतभाई के मन में उत्कट इच्छा रहा करती थी। एकबार वे खेत में बाड़ करने हेतु बबुल का पेड़ काटने गए। पेड़ काटते-काटते अचानक कुल्हाडी उनके पैर में लगी। उन्होंने जूते पहने थे इसलिए पैर बच गया। पर्वतभाई ने सोचा कि 'यदि यह कुल्हाड़ी मेरे पैर पर पड़ती, तो मुझे छः महिना तक खाट में पड़ा रहना पड़ता, लेकिन श्रीहरि ने मुझे उबार लिया है। अतः अब तो मैं गढ़डा जाकर इतना समय महाराज का सत्संग कर लूँ।' ऐसी थी उनकी इस प्रसंग स। सांख्य ज्ञान की समझ! ऐसी समझ देखकर श्रीहरि अत्यंत प्रसन्न हुए।

एकबार पर्वतभाई और उनके पत्नी श्रीहरि के दर्शन करने गढ़डा आए थे। पर्वतभाई तो हमेशा उनके समीप रहकर कथाश्रवण करते और दर्शन करते रहते। यह देखकर श्रीहरि ने एक दिन मयाराम भट्ट से पूछा, 'पर्वतभाई के घरवाले को पूछो कि 'पर्वतभाई भोजन कहाँ लेते हैं? '

उनकी पत्नी ने कहा कि 'वे यहाँ भोजन नहीं लेते! शायद श्रीहरि के पास रहकर उन्हीं की प्रसादी लेते होंगे।'

मयाराम भट्ट ने आकर उनको बताया, तब श्रीहरि ने कहा, 'वे तो यहाँ भी भोजन नहीं करते!'

फिर श्रीहरि ने पर्वतभाई से पूछा, तब उन्होंने बताया कि 'महाराज! आप की मूर्ति के दर्शन छोड़कर भोजन कहाँ से भाये? मैं तो आपके दर्शन से ही तृप्त हो जाता हूँ!'

इस प्रकार करीब सात दिन तक पर्वतभाई ने भोजन नहीं लिया था! बस, केवल श्रीहरि की मूर्ति के आनंद में ही आनंद मानकर देहभाव ही भूल बैठे थे। ऐसा देह का अनादर अन्य कहाँ देखने को मिलता ? फिर श्रीहरि ने ब्रह्मचारी को बुलवाए और इस भक्तराज को भोजन करवाया।

ऐसे थे भक्तराज पर्वतभाई! जिनका स्मरण महाराज भी बार बार करते रहते थे। श्रीहरि ने ब्रह्मानन्द स्वामी और मुक्तानन्द स्वामी को कहा था कि हमारे संनिष्ठ-सच्चे और पक्के सत्संगी तो पर्वतभाई और गोवर्धनभाई आदि हैं। क्योंकि वे अपनी आत्मा को ब्रह्मरूप मानकर तीनों अवस्था में हमको निरंतर देखते हैं।

• • •

भक्तराज शिवलाल सेठ

भक्तराज शिवलाल सेठ

भावनगर जिले के बोटाद गाँव की बात है।

गाँव के लखपति नगरसेठ है भाईचंद दोशी और गाँव के ठाकुर है हमीरखाचर।

हमीरखाचर के दरबार में हमेशा स्वामिनारायणीय संतों की चहलकदमी रहा करती थी, और जैनधर्मी नगर सेठ भाईचंद दोशी के पुत्र भगा दोशी के मन को संतों के वर्तन और स्नेह ने अभिभूत कर दिया था।

एक दिन की बात है, शाला के मास्टरजी भगा दोशी को कलाई से पकड़े नगरसेठ की हवेली तक खींच लाए, और सेठानी से जोर-जोर से कहने लगे, 'देखिए, देखिए, यह आपका लड़का स्वामीपंथी हो गया है। गाँव के ठाकुर हमीरखाचर के दरबार में जो स्वामी आये हैं, उन्होंने उसको अवश्य कुछ जादू-टोना किया लगता है। जब देखो तब 'स्वामी' 'स्वामी' ही पुकारता रहता है।' सेठानी भी स्तब्ध रह गईं और प्यार-पुचकार से पुत्र को समझाने लगीं। किन्तु उसने तो साफ-साफ कह दिया कि 'देखिए, मुझे स्वामी की लगन लग चुकी है, एकबार मैं ने जो अमृत पी लिया है, अब उसकी ऊलटी कैसे हो सकती है? भले ही पिताजी मुझे डाँटे, परंतु स्वामी का नाम अब मुख से नहीं छूट सकता।'

माँ को अपने इकलौते बेटे को अब कुछ भी कहने का साहस नहीं हुआ। जब दरबार हमीरखाचर की ताजण जाति की घोड़ी मर गई थी, और स्वामिनारायण के संत स्वामी व्यापकानन्दजी ने उसे जिंदा कर दी थी, तब से पूरे गाँव में स्वामीपंथ की महिमा फैल गयी! नगरसेठ के पुत्र भगा दोशी को भी पूर्वसंस्कार से संतों का संसर्ग होने लगा, और सत्संग की दृढ़ता प्रतिदिन बढ़ने लगी।

परन्तु उसकी भक्ति में एक और विघ्न आ गया। जैन समाज के अग्रणी और भावनगर राज्य के गणमान्य नगरसेठ भाईचंद दोशी ने पुत्र के 'स्वामीपंथी' होने का जबरदस्त विरोध किया, भगा दोशी को अनेक प्रकार से समझाया। परंतु वे अपनी दृढ़ता से टस से मस न हुए। नगरसेठ ने अपने

पुत्र को दिन भर एक कमरे में बंद करके रखा। इससे भी पुत्र की श्रद्धा तनिक भी नहीं ड़िगी। आँख में पड़े कण की भाँति सेठ के मन में यह बात हमेशा खटकती रहती थी कि मैं जैन श्रावकों में अग्रणी, और मेरे ही पुत्र ने पुरखों के धर्म को छोड़कर यह नया पंथ कहाँ से स्वीकार लिया!

अपनी इज्जत की धज्जियाँ उड़ती देखकर सेठ के कलेजे में छेद पड़े जा रहे थे! उन्होंने भगा दोशी को सत्संग छुड़ाने के लिए अनेक युक्ति-प्रयुक्तियाँ अपनाईं, परंतु उनकी एक भी न चली। आखिर उनको भावनगर नरेश वजेसिंहजी महाराज के पास ले गए। भगा दोशी ने तो महाराजा को भी स्पष्ट सुना दिया कि 'सत्संग स्वीकार करके मैं ने कुछ भी गलत नहीं किया है। स्वामी के सत्संग से मैं सदाचारी जीवन जीना सीखा हूँ। और कुसंगत से दूर रहता हूँ। तो सब सत्संग छुड़ाने के लिए मेरे पीछे क्यों पड़े हैं ?' छोटे से बालक से इतनी स्पष्ट और तेजस्वी वाणी सुनकर राजासाहब बुहत खुश हुए और बालक की मर्जी के अनुसार धर्मपालन करने की अनुमति दे दी।

इस प्रसंग से भगा दोशी की सत्संग-दृढ़ता और बढ़ी। संतों की सेवा और समागम की उन्हें विशेष लगन लगी।

एकबार श्रीहरि को रसोई देने हेतु अपने पिता से छिपाकर भगा दोशी ने घर से भोजन साम्रगी उठा ली, और उनके निवास पर पहुँच गए। महाराज को जब ज्ञात हुआ कि यह लड़के ने घर से बिना पूछे ही यह सामग्री ला रखी हैं, तो उन्होंने उसे स्वीकारने का इन्कार कर दिया। भगा दोशी घर जाकर रोने लगे। भाईचंद शेठ को इस बात का पता चला तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि स्वामिनारायण ने हमारे घर के अन्न का इसी कारण त्याग किया कि वह चोरी करके लाया गया था। उनको अत्यंत सद्भाव हुआ। क्योंकि उनको मालूम था कि दूसरे साघु तो आते ही जबरदस्ती पक्की रसोई के लिए हल्ला मचा देते हैं! और स्वामिनारायण ने तो सामने से आयी हुई उत्तम सामग्री वापस लौटा दी। उनके मन में लगा कि निश्चय ही स्वामिनारायण भगवान मैं कुछ विशेष बात हैं, जो अन्यत्र नहीं है! भाईचंद सेठ पुत्र के साथ भोजन सामग्री लेकर श्रीहरि के पास गए। वहाँ उन्होंने देखा कि संत सभी काष्ट के पात्र में भोजन को नि:स्वाद बनाकर भोजन

करते हैं। उन्होंने श्रीहरि की अलौकिक मूर्ति का भी सर्व प्रथम दर्शन किया था। तो सेठ के मन पर इसकी गहरी छाप पड़ गई। वे अत्यंत प्रभावित हुए। बस इसी घटना से भगा दोशी को सत्संग करने की सदा के लिए अनुकूलता हो गई।

भाईचंद शेठ के देहावसान के बाद भगा दोशी भावनगर राज्य में अग्रणी नगरसेठ माने गए। आज से करीब दो सौ साल पूर्व वे नौ लाख रुपये की आमदनी के असामी थे। फिर भी उन्होंने कभी व्यावहारिक और सामाजिक प्रलोभन में जी नहीं जोड़ा। अपना सत्संग प्रतिदिन दृढ़ करते गए। और श्रीहरि की कृपा के अधिकारी बने।

ऐसे पवित्र पिता के पुत्र शिवलाल भी ऐसे ही पवित्र हुए। शिवलाल सेठ का जन्म संवत् 1882 (सन् 1826) में बोटाद गाँव में हुआ था। अपने पिता के इकलौते बेट। होने से वे बहुत लाड़-दुलार में पले थे। शिवलाल जब सवा वर्ष के हुए तब भगा दोशी उन्हें लेकर श्रीहरि के पास गढ़डा पहुँचे। उन्होंने बालक के सिर पर हाथ रखकर कृपादृष्टि की और बोले, 'आपका यह बेटा तो सिद्धवल्लभ राजा है! हम वनविचरण में थे तब उन्होंने हमारी बहुत सेवा की थी। उस समय उनकी कुछ कसूर रह गई होगी, इस कारण अब आपके वहाँ जन्म लेकर आया है। '

बचपन से ही शिवलाल का जीवन सादगीपूर्ण और अनासक्त था। वे खूब सरल और भक्तिपारायण जीवन जीते थे। गोपालानन्द स्वामी, गुणातीतानन्द स्वामी, सिद्धानन्द स्वामी, योगानन्द स्वामी, भायात्मानन्द स्वामी जैसे महासमर्थ संतों के दर्शन, सेवा-समागम का उनको निरंतर योग रहता था। उन संतों के प्रताप से वे संसार में अनासक्त भाव से भक्ति करते रहते।

छोटी आयु में ही संसार-त्याग करके श्रीहरि के त्यागी वृन्द में जुड़ जाना ही उनका ध्येय था। और रघुवीरजी महाराज को मात्र १३ साल की उम्र में ही उन्होंने स्वयं इस बात से अवगत किया, किन्तु श्रीमंत पिता का यह इकलौता बेटा था। अत: रघुवीरजी महाराज ने उन्हें समझा-बुझाकर मना कर दी। लेकिन उनकी लगन वैसी ही बनी रही ! इतना ही नहीं, भक्ति का वेग प्रबल होता चला। श्रीहरि की मूर्ति का स्मरण और निरंतर भजन ही उनका शौक था! मार्ग में चलते हुए वे कभी भी अपनी दृष्टि का संयम

गँवाते नहीं थे। इधर-उधर देखे बिना श्रीहरि का स्मरण किया करते थे। दुकान पर ग्राहक के साथ भी उनका व्यवहार अत्यंत संयम में रहता। बिना भक्ति की सभी क्रिया में व्यर्थ समय गँवाना उनको जरा भी पसंद नहीं था। दुकान में भी 'वचनामृत' का ग्रंथ और माला साथ रखते। थोड़ा भी समय मिलते ही वे 'वचनामृत' पढ़ने लगते या फिर माला घुमाने लगते। श्रीहरि की मूर्ति उनकी बैठक के सामने रहती थी।

शिवलालभाई के घर किसी मांगलिक प्रसंग पर उनकी साली घर आई थीं। सेठ अपने विशाल परिवार में भी किसीसे बिना प्रयोजन बातचीत नहीं किया करते। अतः शिवलालभाई को दो-तीन माह तक अपनी साली की उपस्थिति का खयाल ही नहीं आया था ! अपनी संयमित दृष्टि, मितभाषी व्यक्तित्व और सत्संगमय जीवन में उनका क्रम यही था: प्रतिदिन पांच बार मानसी पूजा, दो-तीन घंटे तक ध्यान, और रात को नित्यनियम से चेष्टागान (भगवान स्वामिनारायण की स्वाभाविक लीलाओं के सद् प्रेमानन्द स्वामी रचित पद) ! मंदिर में पूरा नित्यक्रम करके जब वे घर आते तब आधी रात बीत गई होती।

एकबार वे भोजन के लिए बैठे कि उनकी साली ने परोसना शुरू किया। अचानक चावल में उसने घी ज्यादा ड़ाल दिया! सेठ ने 'ना, ना' कहते एकदम ऊपर देखा, तो विस्मित होकर साली को निहारते रह गए, और बोले, 'अरे, आप कब आयीं?' साली तो प्रश्न सुनते ही अवाक् रह गई। उसको बुरा लग गया कि इतने महीनों से घर में ही हूँ, किन्तु इनको तो पता ही नहीं है। फिर परिवारजनों ने उसे समझाया कि शिवलाल सेठ की ऐसी अलौकिक स्थिति ही है, वे संसार में नहीं, संसार से परे भगवान में ही लगन लगाए रहते हैं।

उनकी दुकान से मंदिर जाने के रास्ते में एक कच्चा मकान था। उस मकान को गिराकर उसके मालिक ने एक विशाल हवेली बना ली थी। शिवलाल सेठ हमेशा उसी रास्ते से गुजरते थे, परंतु उनकी नजर इस नई हवेली पर गई ही नहीं थी। एकबार चलते चलते उनको अचानक छींक आ गई। उनकी आँखें ऊपर उठ गईं। और उन्होंने देखा कि यहाँ तो विशाल हवेली बन चुकी है। उन्होंने सहज भाव से पूछ लिया, 'अरे, यह कब हो गई ?'

साथ चलते हुए लोग यह सुनकर हँसने लगे कि 'इस हवेली के निर्माण हुए पूरे छः माह बीत चुके हैं।' किन्तु शिवलालभाई को इसका पता भी नहीं था। इतनी संयम दृष्टि से लोग विस्मित रह जाते थे।

एकबार भगा दोशी अपने परिवार के साथ बैलगाड़ी में बैठकर गढ़डा जा रहे थे। शिवलालभाई भी उनके साथ थे। रास्ते में कई खेतों में विविध फस्लें लहरा रही थी। उसे देखकर भगा दोशी फ़स्ल का अंदाजा लगाने लगे। साथ में शिवलाल के चाचा भी थे। दोनों कहा करते थे कि यहाँ तो बोए हुए बीज भी वापस नहीं लौटेंगे ! यहाँ तो बहुत अनाज होगा। इस प्रकार गढ़पुर तक व्यावहारिक बातें करते रहें। फिर शिवलाल सेठ ने कहा, 'पिताजी, ऐसी बातें करने से हमारे घर पर कितना अनाज आएगा? एक दाना भी आएगा क्या? तो फिर भजन का लाभ क्यों न लेना चाहिए? भगवान के दर्शन करने ही तो हम जा रहे हैं, तो हमें भगवान का भजन करते करते ही जाना चाहिए, जिससे हमारे अंतर में शांति मिले, और दर्शन-समागम का सुख भी मिले।' भगा दोशी ने अपनी भूल कुबूल की।

गढ़डा से वरताल जाते समय बोटाद गाँव रास्ते में ही आता है। इसलिए वहाँ बड़े-बड़े सद्‌गुरु पधारते रहते थे। खास करके गुणातीतानन्द स्वामी हर साल दो बार वरताल उत्सव पर जाते, तब बोटाद अवश्य पधारते। उनके साथ संतमंडल भी रहता। शिवलालभाई स्वामी और संतों को निवास देते, और उनके समागम का लाभ भी लेते। कई बार तो स्वयं भी स्वामी के साथ वरताल उत्सव पर चले जाते। कई बार तो वे जूनागढ़ तक भी सत्संग के हेतु जाया करते थे। जूनागढ़ में स्वामी के साथ कभी कभी सांखडावदर के बीड़ की मुलाकात भी हो जाती थी। उस जंगल में स्वामी के साथ खाखरा की (एक प्रकार के पेड़ के पत्तों से निर्मित) पर्णकुटियों में रहते, और काले उड़द की दाल और बाजरे की रोटी खा लेते थे। ऐसी कठिनाईयाँ सहन करके भी शिवलाल स्वामी का सत्संग किया करते थे।

प्रारंभ में उनको गोपालानंद स्वामी का योग अधिक था। परंतु स्वामी ने अपने देहविलय से पूर्व उनको बताया था कि 'यदि तुम्हें केवल व्यवहार

सीखना हो तो सुंदरियाणा गाँव के पूजा सेठ के पास जाना, और व्यवहार तथा मोक्ष दोनों सीखना हो तो जूनागढ़ के जोगी गुणातीतानन्द स्वामी के पास जाना। '

गोपालानन्द स्वामी की आज्ञानुसार शिवलाल सेठ वैसे तो गढ़डा प्रदेश के सत्संगी होने पर भी कई विध्न सहन करके गुणातीतानंद स्वामी का सत्संग करते रहते। उसी प्रकार उन्होंने स्वामी को सर्व प्रकार से प्रसन्न किए।

एक बार रघुवीरजी महाराज गढ़डा में बिराजमान थे। बड़ौदा के महाराजा सियाजीराव गायकवाड़ मंदिर के दर्शन करने के लिए पधारे। आचार्य महाराज की सिफारिश से शिवलालभाई सरकार के मुख्य अधिकारी बने थे। फिर भी वे हमेशा सादे वस्त्र पहनते थे। तो ऐसे ही वस्त्र में वे सरकार के सत्कार के लिए जा रहे थे। इसे देखकर रघुवीरजी महाराज ने उनको अच्छे वस्त्र और गहने पहनकर जाने की सूचना दी। परंतु शिवलालभाई ने कहा, 'मेरे पास तो यही वस्त्र हैं, गहने मेरे पास है ही नहीं!' तब महाराजश्री ने आदेश दिया कि आप उचित वस्त्र परिधान एवं गहने पहनकर ही सरकार का सत्कार करने के लिए जाएँ! शिवलाल ने इस आदेश का एक ही दिन के लिए पालन किया। परंतु जैसे ही सत्कार समारोह समाप्त हुआ, उन्होंने तुरंत वस्त्र-अलंकार उतारकर अपने सादे वस्त्र धारण कर लिए।

वे अत्यंत साधनसंपन्न होने पर भी गुणातीतानन्द स्वामी के सत्संग के कारण संसार व्यवहार में बिलकुल निःस्पृहिता से रहते थे। स्वामिनारायण भगवान ने उनको एकबार स्वप्न में दर्शन देकर कहा था कि 'आप सारंगपुर के राठोड़ धाधल को व्यवहार में मदद करें!' तो शिवलालभाई ने राठोड़ धाधल को वे जीवित रहे तब तक पूरी सहायता दी। गढ़पुर में हरिकृष्ण महाराज की मूर्ति की प्रतिष्ठा के अवसर पर भी उन्होंने बाईस हज़ार रुपये का खर्च किया और धूमधाम से उत्सव मनाया। किन्तु गढ़पुर में कुछ कारणों से शिवलाल सेठ के गुरु अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी का कुछ लोगों में अधिक द्वेष था। और जब तक उत्सव की तैयारियों में शिवलाल गढ़पुर रहे, तब तक उनको स्वामी के लिए कुत्सित शब्द सुनने पड़े। इसी कारण ही

शिवलालभाई से स्वामी ने अपने साथ गाड़ी में बिठाकर कहा था कि तुम्हारे मन में तुम ऐसा मानते हो कि मैंने गढ़डा में मूर्तिप्रतिष्ठा करवाई तथा भावनगर में रघुवीरजी महाराज की पधरावनी करवाई, यह बहुत बड़ा काम किया, परंतु तेरे जीव के सामने देखता हूँ तो अभी तो तेरा आधा ही सत्संग रह गया है।'

'ऐसे साधु को छोड़कर अन्यत्र किसी भी प्रकार के सुख की इच्छा रखना, वह कैसा है? तो जैसे एकबार एक गाय का बछड़ा गोशाला में अपनी माँ के पास दूध पीने गया। परंतु उस गोशाला में केवल बैल ही खड़े थे। इसलिए जैसे ही बछड़ा बैल को गाय समझकर थन में मुख रखने का यत्न करता, तो वह बैल उसको जोरों की लात लगा देता था। इस प्रकार सभी बैलों ने एक एक लात मारी, जिससे बछड़े को मुँह पर ऐसी सूजन आ गयी कि शाम को अपनी माँ गोशाला में लौटी, तब भी वह बछड़ा मुँह सूजने के कारण अपनी माँ का दूध भी नहीं पी सका !'

इस दृष्टांत देकर स्वामी ने आगे समझाया कि 'ऐसे गुणातीत साधु को छोड़कर दूसरी जगह सुख लेने जाना, वह तो बछड़े की तरह लातें खाने जैसा है। क्योंकि जब तक आज्ञा-उपासना समझने में थोड़ी भी कसूर रहेगी, तो हम इन साधु के पास नहीं बैठ पाएँगे। जिस प्रकार गाय का बछ़डा अपनी माँ के पास नहीं जा सका।' फिर स्वामी ने शिवलाल को ऐसा भी कहा कि 'अब मैं इस प्रकार दो महीने तक बातें करूँगा, तब तेरा जीव जिस प्रकार पहले भगवान में जुड़ा था, उसी प्रकार जुड़ सकेगा। ऐसा स्थूलभाव तेरे जीव में आ चुका है और ये सभी बातें भगवान के साथ जुड़ने के लिए ही हैं।'

स्वामी की इस परावाणी के शब्द शिवलालभाई दोनों हाथ जोड़कर नम्रता से सुन रहे थे। क्योंकि वे अत्यंत शुद्ध मुमुक्षु थे। अत: वे अपनी कसूर समझकर स्वामी के उपदेश को हृदयस्थ करके धारणकर सकते थे। आत्मीयता के बिना सामान्य व्यक्ति के साथ सत्पुरुष ऐसा वर्ताव नहीं रखते हैं।

एक दिन सभा में आत्मानन्द स्वामी उपदेश दे रहे थे। और कुछ चबाने की 'कट्' सी आवाज़ आई। स्वामी ने एकदम कहा, 'इस सभा में हड्डी कौन चबा रहा है ?' यह सुनकर शिवलालभाई सभा से तत्काल उठे

और वे जो सुपारी खा रहे थे उस बाहर जाकर थूक दी। उसी क्षण हमेशा के लिए उन्होंने शपथ ले ली कि अब से सुपारी कभी नहीं खाएँगे और उनको स्वामी के ऐसे शब्दों से तनिक भी बुरा नहीं लगा।

एकबार वे जूनागढ़ की बाजार में गए। वहाँ उन्होंने एक जगह से सुवर्ण खरीदा और दूसरी जगह बेच दिया। उसमें उनको 150 रुपए का मुनाफ़ा मिला। उन्होंने मंदिर में आकर रसोई के लिए सब दान दे दिया। गुणातीतानन्द स्वामी ने पूछा कि 'शिवलाल, तुम्हें सुवर्ण लेने का संकल्प हुआ, परंतु कभी सो करोड़ मन बाजरे के छीलके लेकर उसका व्यापार करने का संकल्प होता है ? महाराज की मूर्ति के आगे प्रकृति पुरुष तक सब बाजरे के छीलके के समान ही हैं। तूने साधु-समागम एवं दर्शन छोड़कर इतना समय व्यवहार में लगाया इसमें क्या कमाई की ?' स्वामी को उनकी मुमुक्षुता पर पूरा विश्वास था, इसी कारण वे कई बार स्वामी ने पूछा कि 'शिवलाल, तुम्हें सुवर्ण लेने का संकल्प हुआ, परंतु कभी सो करोड़ मन बाजरे के छीलके लेकर उसका व्यापार करने का संकल्प होता है ? महाराज की मूर्ति के आगे प्रकृति पुरुष तक बाजरे के छीलके ही हैं। आपने साधु-समागम एवं दर्शन छोड़कर इतना समय व्यवहार में लगाया इसमें क्या कमाई की ?' स्वामी को उनकी मुमुक्षुता पर पूरा विश्वास था, इसी कारण वे कईबार शिवलालभाई को इस प्रकार स्पष्ट कहकर भी सच्चा ज्ञान देते रहते।

शिवलालभाई की श्रद्धा भी उत्कृष्ट थी। स्वामी के कडुए बचनों को भी मीठे मानकर वे आत्मसात् कर लेते थे। स्वामी ने इस प्रकार शिवलालभाई का अलौकिक गढ़न किया था।

उनको ध्यान करने में भी बहुत रुचि थी। एकबार उनके पिता भगादोशी ने शिवलाल को कहा, 'शिवलाल, मुझे भी तेरी तरह ध्यान करना सीखा दे।'

शिवलालभाई ने कहा, 'पिताजी ! वह आप से नहीं हो सकेगा, क्योंकि मैं तो ध्यान करने से पहले यह अपनी हवेली और बोटाद शहर सभी को चारों ओर से जलाकर इसकी राख का बड़ा ढ़ेर बनाता हूँ, फिर इस शरीर को नश्वर-क्षणिक मानकर फिर उस राख के ढ़ेर पर बैठकर ध्यान लगाता हूँ।' इस बात को बीच में से ही उड़ाकर भगा दोशी बोल उठे, 'अरे शिवा,

तेरा ध्यान तुझे मुबारक, मुझे ऐसा ध्यान नहीं सीखना है।'

और वास्तव में शिवलालभाई का ध्यान ऐसा ही था। एकबार वे ध्यान कर रहे थे, कि पहली मंझिल से घी के भरे बर्तन लुढ़के और पूरी सीढ़ी घी से सराबोर हो गई। बर्तन टूट गया। किन्तु शिवलालभाई का ध्यान अक्षुण्ण रहा! उनको इतनी भारी आवाज़ का तो पता ही नहीं चला! भगादोशी ने उनको जल्दी से ध्यान से जगाए और घी के बारे में बोलने लगे, तो शिवलाल ने अत्यंत स्वस्थता से कहा, 'पिताजी, इसमें क्या? वैसे पेट में ढ़लना था, उसके बदले वह सीढ़ियों पर लुढ़क गया।' भगादोशी अवाक् रह गए, शिवलाल को इस घटना का तनिक भी दु:ख नहीं हुआ ।

गुणातीतानंद स्वामी ने की हुई ब्रह्मज्ञान की बातों के अद्‌भुत संग्रह में शिवलालभाई का भी सुन्दर योगदान है। स्वामी को उनके साथ कैसी आत्मीयता थी, उसका उल्लेख मिलता है। उन्होंने लिखा है कि एकबार चैत्र कृष्ण द्वितीया दिन वरताल में वे बीमार हो गए थे, स्वामी तृतीया के दिन उनकी देखभाल के लिए गए। स्वामी के आशीर्वाद से उनको अच्छा हो गया। फिर उन्होंने वरताल की सभा में बात बतायी कि, जैसे बाप-बेटे में कोई अलगाव नहीं होता है, वैसे ही गुरु-शिष्य का भी एकता-आत्मीयता अनन्य है। शिवलाल के साथ स्वामी का भाव पिता को पुत्र से हो, वैसा ही था।

महाराज के समय के समर्थ सद्‌गुरु भायात्मानंद स्वामी अंतिम अवस्था में वागड गाँव में निवास करते थे। वह स्थान बोटाद से समीप ही था। अत: शिवलाल कई बार वहाँ जाते थे। और भायात्मानन्द स्वामी का सत्संग करते थे। उनकी अंतिम अवस्था के समय गुणातीतानन्द स्वामी वागड पधारे थे। और उन्होंने भायात्मानन्द स्वामी को महाराज के पुरुषोत्तम स्वरूप की एवं स्वरूपनिष्ठा की अद्‌भुत बातें की थी। इन बातों से भायात्मानंद स्वामी को महाराज के स्वरूप का यथार्थ निश्चय हो गया था। अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी की महिमा भी उनको समझ में आई। गुणातीतानंद स्वामी ने उसी समय शिवलालभाई से कहा था कि 'अब तेरे गुरु को महाराज धाम में ले जाएँगे।'

थोड़े ही दिनों के बाद ठीक ऐसा ही हुआ जैसा स्वामी ने कहा था।

भायात्मानन्द स्वामी बहुत थोड़े ही समय बीमार रहे, और उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया। इसके बाद तुरंत ही शिवलालभाई को भी बुखार आया। भगा दोशी उनको लेने के लिए वागड गए। परंतु शिवलाल ने आने की मना कर दी। किन्तु संतों के आदेश से वे बोटाद जाने के लिए तैयार हुए। परंतु शहर में जाकर भी घर पर नहीं गए। मंदिर में ही उन्होंने निवास रखा। कुछ दिनों के बाद संवत् 1916 (सन् 1860) आषाढ शुक्ला पंचमी के दिन वे श्रीहरि का स्मरण करते हुए ३२ साल की छोटी उम्र में ही अक्षरधाम में उनकी सेवा में बिराजमान हो गए।

• • •